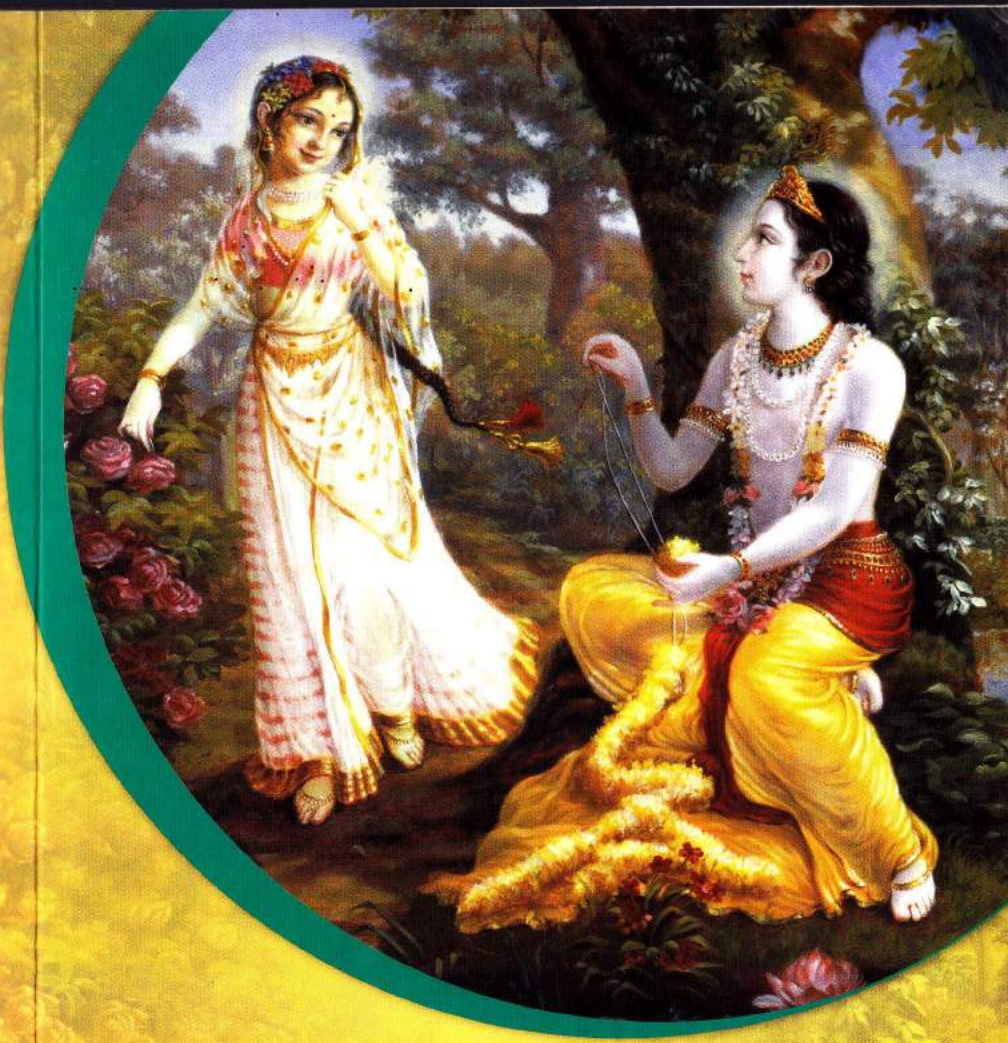

प्रेम प्रदीप

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कृत एक उपन्यास

विषय-सूची

ऋण-स्वीकार ..... *vii*

समर्पण ..... *ix*

प्रथम किरण १

प्रेमदास बाबाजी की हरिदास बाबाजी से भेंट १

हरिदास बाबाजी तथा प्रेमदास बाबाजी के बीच वार्तालाप २

पण्डित दास बाबाजी से सम्बन्धित विषय तथा कर्म, ज्ञान और हरिकथा के बारे में चर्चा २

गोवर्धन की ओर जाते हुए हरिदास और प्रेमदास कीर्तन करते हैं ३

द्वितीय किरण ५

हरिदास और प्रेमदास बाबाजी गोवर्धन में पण्डित बाबाजी की गुफा में प्रवेश करते हैं, वे उनके साथ सभा मंच पर जाते हैं तथा बिरबम से आये एक बाबाजी कीर्तन करते हैं ५

केवल कृष्ण की सेवा करने से ही शान्ति प्राप्त की जा सकती है, यम तथा नियम से प्रारम्भ होनेवाले योगाभ्यास से नहीं ६

जब सभा में उपस्थित एक योगी अर्चन की अपेक्षा योग की प्रधानता का समर्थन करता है, तब इस विषय पर सामंजस्य स्थापित करने का निवेदन किया जाता है ७

पण्डित दास बाबाजी योग की तुलना में भक्ति की श्रेष्ठता सिद्ध करते हैं ७

योगपथ की निकृष्टता का प्रदर्शन ९

यद्यपि योगी बाबाजी प्रसन्न हुए, तथापि वे इन्द्रिय संयम के सम्बन्ध में भक्ति की अपेक्षा योग के महत्त्व का समर्थन करते हैं १०

शुष्क चिन्तन या अभ्यास द्वारा साधक का निश्चित रूप से पतन हो जायेगा, यदि भक्ति के अंगों का प्रयोग इन्द्रियतृप्ति के लिए कर्मकाण्ड के रूप में किया जाए. १०

तृतीय किरण..... १३

योगी बाबाजी के कुंज में मल्लिक महाशय, नरेन बाबू तथा आनन्द बाबू का आगमन..... १३

मल्लिक बाबू अपना परिचय देते हैं..... १४

नरेन बाबू तथा आनन्द बाबू का परिचय..... १५

योगी बाबाजी भौतिकतावादियों के संग के प्रभाव से पतित हो जाने का भय करते हैं..... १५

मल्लिक महाशय की प्रतिज्ञा, वेश परिवर्तन तथा पवित्र नाम स्वीकार करना, और साथ ही ब्रह्मवाद में श्रद्धा के कारण नरेन तथा आनन्द बाबू का स्वतन्त्र व्यवहार..... १६

जब योगी बाबाजी कुछ आध्यात्मिक जिज्ञासा करते हैं, तो ब्रह्मवादी नरेन बाबू हिन्दू धर्म के दोषों को प्रकट करते हैं..... १७

जब बाबाजी कुछ आधारभूत प्रश्न पूछते हैं, तो आनन्द बाबू ब्रह्मवाद की शिक्षाओं पर आधारित उत्तर देते हैं..... १९

मल्लिक बाबू के प्रश्नों के उत्तर देते हुए योगी बाबाजी राजयोग की तुलना हठयोग से करते हैं..... २०

हठयोग के विज्ञान का विश्लेषण..... २१

हठयोग पर निष्कर्ष रूप टिप्पणी..... २४

योगी बाबा के उपदेशों के प्रभाव से नरेन तथा आनन्द बाबू की वैष्णव धर्म में श्रद्धा विकसित हो जाती है..... २५

चतुर्थ किरण..... २७

मल्लिक महाशय तथा दोनों बाबू योगी बाबाजी के साथ गोवर्धन गुफा में जाते हैं तथा मार्ग में वे एक गीत सुनते हैं..... २७

पण्डित दास बाबाजी के आश्रम में दोनों वैष्णव और दोनों बाबू..... २९

योगी बाबाजी पण्डित दास बाबाजी से पूछते हैं कि योगाभ्यास के बिना रस समाधि तथा राग साधना कैसे प्राप्त किये जा सकते हैं..... ३०

पण्डित बाबाजी का उत्तर : (क) भौतिक आसक्ति तथा आध्यात्मिक आसक्ति के मध्य अन्तर; वैष्णव साधन किये बिना वैराग्य की प्राप्ति अथवा योगाभ्यास द्वारा आध्यात्मिक आसक्ति प्राप्त करना असम्भव है..... ३०

(ख) स्वत:स्फूर्त प्रेम में रागानुग भक्ति की योगाभ्यास तथा निराकार ज्ञान से श्रेष्ठता का विश्लेषण..... ३१

पण्डित दास बाबाजी की व्याख्या द्वारा सभी मोहित हो जाते हैं और नरेन तथा आनन्द बाबू का राजा राम मोहन राय के विषय में सन्देह उत्पन्न हो जाता है..... ३३

अपने तीन साथियों को कुंज की ओर वापिस ले जाते हुए योगी बाबाजी युक्तिपूर्वक गाते हैं..... ३४

पंचम किरण..... ३५

आधुनिक पाश्चात्य विचारानुसार, वैष्णव विषयासक्त लोग होते हैं तथा भक्ति केवल उच्छृंखलता या व्यभिचार है..... ३५

नरेन बाबू का सन्देह कि विग्रह अर्चन मात्र मूर्तिपूजा है तथा इस विषय पर उनकी मनोकल्पना..... ३५

श्रीविग्रह आराधना के विषय में आनन्द बाबू की अधिक परिशुद्ध विचारधारा..... ३६

बाबाजी उन्हें विग्रहाराधन की चर्चा बाद में करने का आश्वासन देकर सो जाने का अनुरोध करते हैं..... ३७

योगी बाबाजी राजयोग की आठ प्रक्रियाओं का वर्णन करते हैं..... ३७

(१) यम—ये पाँच प्रकार के हैं, जैसे अहिंसा और सत्यवादिता..... ३८

(२) नियम—ये पाँच प्रकार के हैं, जैसे शुचि और सन्तोष..... ३९

(३) आसन—बत्तीस प्रकार के आसनों में से दो, पद्मासन और स्वस्तिकासन..... ३९

(४) प्राणायाम्—रेचक, पूरक और कुम्भक द्वारा सिद्धि..... ४०

प्राणायाम के अभ्यास में तीन नियम—(क) स्थान सम्बन्धी (ख) काल सम्बन्धी तथा (ग) संख्या सम्बन्धी।..... ४०

प्राणायाम के कुम्भक का अभ्यास 'मात्रा' द्वारा नाड़ियों के शोधन द्वारा किया जाता है ४१
(६) धारणा ४२
(७) ध्यान ४३
(८) समाधि—समाधि की अवस्था में राजयोग का अभ्यास करते हुए भी प्रेम का आस्वादन किया जा सकता है ४३
मल्लिक महाशय की राजयोग सीखने की उत्सुकता ४४
आनन्द तथा नरेन बाबू बाबाजी से उपदेश प्राप्ति का अनुरोध करते हैं ४४
यह स्वीकारते हुए कि वैष्णव निर्दोष हैं, परन्तु उन्हें मूर्तिपूजक क्यों कहा जाता है, ऐसा संशय करते हुए दोनों बाबू बाबाजी से जिज्ञासा करते हैं ४५
बाबाजी वैष्णव धर्म के विज्ञान का वर्णन करते हैं ४५
बाबाजी तथा दोनों बाबू श्रीविग्रह के समक्ष कीर्तन तथा नृत्य करते हैं ४६

षष्ठ किरण ४७

नरेन बाबू को ब्रह्मवादी प्रचारक के पत्र की प्राप्ति तथा उसका परिणाम ४७
मल्लिक महाशय नित्यानन्द बाबाजी का पत्र प्राप्त करते हैं ४८
पत्र की विषय वस्तु सुनकर दोनों बाबू आत्मग्लानि का अनुभव करते हैं ४९
दो बाउल बाबाजी कीर्तन करते हुए प्रवेश करते हैं ४९
बाउल वास्तव में निराकारवादी हैं ५०
चार सम्प्रदायों के चार आचार्यों के दर्शन का सामंजस्य तथा एकत्त्व ५१
श्री चैतन्य महाप्रभु मध्व सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखते हैं। नेड़ा, दरवेश, सांई, ये सभी धर्मध्वजी तथा अभक्त हैं ५२
महाप्रभु की शिक्षाएँ गोस्वामियों के ग्रन्थों में शुद्ध रूप में प्रदर्शित हैं ५२
सभी विषयों तथा विज्ञानों में विशिष्ट ज्ञान विद्यमान होता है, किन्तु भक्ति का विज्ञान सर्वोपरि है ५३
केवल आध्यात्मिक ग्रन्थ पढ़ने तथा तर्क द्वारा भक्ति जागृत नहीं होती ५३

कृष्ण को एक साधारण मनुष्य समझते हुए, नरेन परम भगवान् के स्वभाव के विषय में प्रश्न करते हैं ५४
यद्यपि परम भगवान् एक हैं, वे कर्मियों, ज्ञानियों तथा भक्तों के समक्ष भिन्न-भिन्न रूप में प्रकट होते हैं ५४
परमात्मा, ब्रह्म तथा भगवान् के विभिन्न पहलूओं पर चर्चा ५५
भगवान् का ऐश्वर्य तथा माधुर्य; नरेन बाबू तथा आनन्द बाबू का माधुर्य के प्रति स्वाभाविक आकर्षण ५६
बाबाजी के निर्देशानुसार, दोनों बाबू श्री चैतन्य चरितामृत की चर्चा करते हैं ५७
चैतन्य चरितामृत के पाठ का स्वाभाविक परिणाम—प्रेमाश्रु, नृत्य तथा कीर्तन ५८
नरेन बाबू तथा आनन्द बाबू पवित्र नामों की शरण लेते हैं ५९
दोनों बाबू वैष्णव वेश धारण करते हैं ५९
दोनों बाबुओं की अन्यों के प्रति करुणा उत्पन्न हो जाती है ६०

सप्तम किरण ६१

नरेन बाबू ब्रह्मवादी प्रचारक से पत्र द्वारा प्रश्न करते हैं ६१
प्रेम कुंज में आयोजित उत्सव जिसमें सभी ने भाग लिया ६१
प्रेम कुंज में महिला कक्ष तथा प्रेमभाविनी का चैतन्य चरितामृत पाठ ६१
प्रेम कुंज उत्सव में प्रसाद सेवा ६४
वैष्णव उच्छिष्ट की महिमा का श्रवण कर दोनों बाबू और मल्लिक महाशय कुछ प्रसाद ग्रहण करते हैं ६४
केवल वैष्णव ही मनुष्यों के बीच एकता ला सकते हैं ६५
प्रेमभाविनी नरेन बाबू की बुआ के रूप में अपना परिचय देती है तथा अतीत की वार्ताओं से उनके स्नेह में वृद्धि होती है ६६
वे प्रेम कुंज से प्रस्थान करते हैं तथा मार्ग में कुछ गोपबालकों का वसन्तोत्सव देखते हैं ६७
व्रजभाव का आस्वादन करते हुए वे योगी बाबाजी के कुंज में प्रवेश करते हैं ६९
तर्क-वितर्क को त्यागकर दोनों बाबू वैष्णवों के साथ भक्ति क्रियाएँ करते हैं ७०

अष्टम किरण ७१

नरेन बाबू के प्रश्नों का ब्रह्मवादी प्रचारक द्वारा प्रत्युत्तर ७१

भक्ति के स्वभाव पर ब्रह्मवादी का विचार ७१

ब्रह्मवादी दर्शन परम सत्य की सुन्दरता को नहीं स्वीकारता ७२

निराकारवाद में प्रेमभावनाओं पर तर्क की प्रधानता ७२

ब्रह्मवाद दर्शन में भक्ति स्वरूपविहीन एकेश्वरवाद है ७३

नरेन बाबू को नौकरी लेने का प्रलोभन ७३

योगी बाबाजी ब्रह्म दर्शन के दोष दर्शाते हैं तथा सभी पण्डित बाबाजी के मण्डप में जाते हैं ७४

पण्डित बाबाजी रस तत्त्व की चर्चा करते हैं तथा सभी लोगों को सर्व शास्त्रों के सार 'श्रीमद्भागवत्' का आस्वादन करने का उपदेश देते हैं ७५

वास्तविक रस क्या है ७६

इन्द्रियभोग का आनन्द भक्तिरस का विकृत प्रतिबिम्ब है, यद्यपि यह भिन्न नहीं है ७७

भाव तथा रस में अन्तर—रस समस्त भावों का सम्मिश्रण है ७७

तीन प्रकार के रसों की व्याख्या—पार्थिव, स्वर्गीय तथा आध्यात्मिक ७८

पार्थिव रस ७९

स्वर्गीय रस तथा वैकुण्ठ रस से इसकी निकृष्टता ७९

वैकुण्ठ रस तर्क पर आश्रित नहीं है ८०

नवम किरण ८१

रस के विषय में पण्डित बाबाजी की शिक्षाओं के बारे में दोनों बाबुओं का निष्कर्ष ८१

स्वर्गीय प्रेम के सम्बन्ध में नरेन बाबू का यथोचित निष्कर्ष ८१

वैकुण्ठ प्रेम के विषय में नरेन बाबू का उचित निष्कर्ष ८२

नरेन बाबू ब्रह्मवादी दर्शन का खण्डन करते हैं (१) भाव तर्क पर निर्भर नहीं करता ८३

(२) अपने पिता के प्रति श्रद्धाभाव भक्ति नहीं है ८३

ब्रह्मवादी प्रचारक के लिए खेद का प्राकट्य ८४

दोनों बाबुओं का माधुर्य रस के प्रति आकर्षण ८४

पण्डित बाबाजी पुन: वैकुण्ठ रस के विज्ञान की चर्चा करते हैं ८४

नित्य होने के कारण, वैकुण्ठ तथा परम ब्रह्म विविधता से परिपूर्ण हैं। यदि वे विविधता से रहित होते, तो उनका कोई अस्तित्व ही न होता ८५

ब्रह्म वैकुण्ठ की सीमा तथा आवरण है ८५

सनातन विविधता विभिन्न जीवात्माओं तथा भगवान् के बीच भेद स्थापित करती है ८६

वैविध्य क्षमता की शक्ति तीन प्रकार की होती है—सन्धिनी, सम्वित तथा ह्लादिनी ८६

संसार पूरा जड़ पदार्थ का बना तथा अशुद्ध है, जबकि वैकुण्ठ आध्यात्मिक तथा शुद्ध है ८७

चित् का अर्थ—समाधि द्वारा प्राप्त ज्ञान, आत्मा तथा उसका शरीर ८७

चित् या चेतना दो प्रकार की है—प्रत्यग तथा परग ८८

पाँच रसों का परिचय—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य ८८

वैकुण्ठ के विभिन्न विभाग तथा उन भिन्न क्षेत्रों में रस की स्थिति ८९

दशम किरण ९१

रति विचार—रति रस का मूल है ९१

रति विचार (१) तीन भिन्न लक्षण भाव, उत्कण्ठा, तथा लालसा से परिपूर्ण हैं ... ९१

रति विचार (२) रस के लिए प्रयास के प्रादुर्भाव को रति कहते हैं, न कि रुचि .. ९२

विषय तथा आश्रय में अन्तर, जो विभाव के अन्तर्गत ही दो प्रकार के आलंबन हैं ९२

विभाव के अन्तर्गत उद्दीपन ९३

माधुर्य रस दो प्रकार का है—स्वकीय तथा परकीय—जिसकी इस सभा में चर्चा नहीं की जानी चाहिए ९३

कोई भी अपने विशिष्ट रस की अपेक्षा किसी अन्य रस के योग्य नहीं होता..... ९४
अनुभाव..... ९४
आंगिक तथा सात्त्विक अनुभावों के बीच अन्तर का विचार..... ९६
तेंतीस संचारी भाव..... ९६
व्यभिचारी भाव..... ९७
संचारी भाव रति को पुष्ट करते हैं..... ९७
अपने विशिष्ट सम्बन्ध से मिश्रित रति ही प्रेम है..... ९८
निरपेक्ष विचारपूर्वक रस का तुलनात्मक अध्ययन तथा साथ ही शान्त रस पर विचार..... ९८
दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य रस पर विचार..... ९९
रस तत्त्व को श्री गुरुदेव के साथ आस्वादन करके समझना चाहिए..... ९९
आनन्द तथा नरेन बाबू वैष्णव पद प्राप्त करते हैं..... १००

पात्र परिचय..... १०१
श्लोक एवं गीत..... १०२
प्रेम प्रदीप प्रकाश..... १०३
सच्चिदानन्द श्रील भक्तिविनोद ठाकुर..... १०७

प्रथम किरण

प्रेमदास बाबाजी की हरिदास बाबाजी से भेंट

वसन्तु ऋतु के एक दिन जैसे ही सूर्यास्त हुआ, उसी समय भक्त शिरोमणि हरिदास बाबाजी संध्या वंदना समाप्त कर अपने कुंज से बाहर आये तथा यमुना नदी के किनारे-किनारे वन मार्ग पर चले गये। जब वे अत्यन्त आनन्द से वन को जा रहे थे, उस समय उनके हृदय में प्रकट होनेवाली प्रेम की विभिन्न भावनाओं का वर्णन करना कठिन है। उसी समय मार्ग में, बाबाजी द्वारा देखे गये एक दृश्य ने उन्हें भगवान् की लीला का स्मरण करवा दिया और वे, "हे व्रजेन्द्र नन्दन! हे गोपीजन वल्लभ" पुकारते हुए भूमि पर लोटने लगे। निरन्तर बहते हुए भावपूर्ण अश्रुओं ने उनके गालों पर लिखे हुए भगवन्नाम को मिटा दिया। बाबाजी के कदम्ब पुष्प सदृश अंग रोमोत्कर्ष के कारण शोभायमान प्रतीत हो रहे थे। उनके हाथ ढीले पड़ गये तथा वे अपनी जप माला धारण किये रहने में असमर्थ हो गये। धीरे-धीरे वे अपनी बाह्य चेतना खो बैठे तथा एक उन्मत्त व्यक्ति की तरह नाचने लगे। जब बाबाजी भौतिक प्रकृति से परे आध्यात्मिक स्थिति में पूर्णतया प्रविष्ट हो गये, तब उनमें कम्पन, प्रस्वेद, कण्ठावरोधन और देह का रंग उड़ना जैसे भाव के सभी लक्षण प्रकट हो गये। बाबाजी गहरी साँस लेते हुए "हे कृष्ण! हे प्राणनाथ!" कहते हुए रोने लगे। इस प्रकार हरिदास बाबाजी वैकुण्ठ का आनन्द अनुभव कर रहे थे, तभी सुविख्यात प्रेमदास बाबाजी केशी घाट को पार करते हुए वहाँ पहुँचे। मिलते ही दोनों वैष्णवों में अचानक ही मैत्री भावविभोरता जागृत हो गई। एक-दूसरे के सुन्दर चेहरों को देखते ही वे नृत्य करने लगे। मौखिक सत्कार करने से पूर्व, स्वाभाविक स्नेह के कारण उन्होंने एक-दूसरे का आलिंगन किया और एक-दूसरे को अपने अश्रुओं से नहला दिया। तदोपरान्त उन्होंने प्रेमपूर्ण शब्दों के साथ एक-दूसरे का सत्कार किया।

हरिदास बाबाजी तथा प्रेमदास बाबाजी के बीच वार्तालाप

प्रेमदास बाबाजी ने कहा, "हे बाबाजी! कुछ दिनों से आपके दर्शन न होने के कारण मेरा हृदय टूट चुका था। इसलिए, स्वयं को शुद्ध करने के लिए मैं आपके दर्शन करने आपके कुंज आ रहा था। पिछले कुछ दिनों से मैं यावत् और नन्दग्राम जैसे स्थानों के दर्शन करने जा रहा था।"

हरिदास बाबाजी ने उत्तर दिया, "हे बाबाजी, क्या मुझ जैसे मन्दभाग्य व्यक्ति के लिए आपके दर्शन प्राप्त करना सम्भव है? पिछले पाँच दिनों से पण्डित दास बाबाजी के दर्शन करने के लिए मैं गोवर्धन के निकट निवास कर रहा था। मैं आज सुबह ही यहाँ आया। आपके चरणकमलों के दर्शन करके मैंने तीर्थयात्रा का फल प्राप्त कर लिया है।"

पण्डित दास बाबाजी का नाम सुनते ही, प्रेमदास बाबाजी का तिलक से सुशोभित चेहरा प्रेम से खिल उठा। जब प्रेमदास बाबाजी ने संन्यास ग्रहण किया था, तब उन्होंने पण्डित दास बाबाजी के समक्ष *भक्तिरसामृतसिन्धु* और *उज्ज्वल नीलमणि* का पाठ किया था। वह स्मरण करते हुए उनकी अभूतपूर्व आनन्दानुभूति ने उनके पण्डित दास बाबाजी के प्रति अनन्य भक्तिभाव का निर्देश दिया था। एक क्षण मौन रहने के बाद प्रेमदास बाबाजी ने कहा, "हे बाबाजी, पण्डित दास बाबाजी की भक्तों की प्रकाशमान सभा में आजकल किस विषय पर चर्चा हो रही है? आपके संग उनकी सभा में जाने की मेरी हार्दिक अभिलाषा है।"

पण्डित दास बाबाजी से सम्बन्धित विषय तथा कर्म, ज्ञान और हरिकथा के बारे में चर्चा

यह सुनकर हरिदास बाबाजी ने प्रेमपूर्वक प्रेमदास बाबाजी का आलिंगन किया और कहा, "हे बाबाजी, पण्डित बाबाजी के सारे कार्यकलाप दिव्य हैं। मैं केवल एक दिन के लिए उनके दर्शन करने गया था, परन्तु मैं सात दिन तक उनका संग छोड़ नहीं पाया। आजकल उनकी पवित्र गुफा में अनेक साधु उपस्थित हैं। मेरा विचार है कि वे अगले कुम्भ मेले तक वहीं रहेंगे। प्रतिदिन

वहाँ नवीन विषयों पर चर्चा होती है। वहाँ ज्ञान, कर्म तथा शुद्ध भक्ति से सम्बन्धित विषयों पर प्रश्नोत्तर होते हैं।"

यह सुनकर प्रेमदास बाबाजी अचानक बोले, "बाबाजी, हमने सुना है कि महाभागवत भगवान् हरि के मधुर विषयों के आस्वादन में मदोन्मत्त रहते हैं। वे कर्म और ज्ञान की चर्चा में सम्मिलित नहीं होते। तो फिर हमारे परम आराध्य पण्डित दास बाबाजी इन विषयों पर अपना समय क्यों व्यय कर रहे हैं?"

हरिदास बाबाजी ने कहा, "बाबाजी, मेरे नास्तिक मन में भी ऐसा संशय जागृत हुआ था। परन्तु जब मैंने पण्डित दास बाबाजी को पवित्र संग में उन चर्चाओं का श्रवण किया, तो मुझे बोध हुआ कि भक्तों की कर्म तथा ज्ञान के विषय में की गई सभी वार्ताएँ और कुछ नहीं वरन् हरिकथा ही होती हैं। ऐसी चर्चाएँ भौतिकतावादियों द्वारा चर्चित विषयों जैसी नहीं हैं, जो केवल मन को उत्तेजित करती हैं। वरन्, भक्तों के संग में ऐसी वार्ताओं का श्रवण करने से जीव कर्म और ज्ञान के बन्धन से मुक्त हो जाता है।"

यह सुनकर प्रेमदास बाबाजी रो पड़े और बोले, "बाबाजी महाशय, आपका निर्णायक वचन अमृत तुल्य है। और क्यों न हो? आप तीनों मण्डलों (व्रज, गौड़ और क्षेत्र) में श्री नवद्वीप धाम के सिद्ध गोवर्धन दास बाबाजी के प्रिय शिष्य के रूप में विख्यात हैं। यदि आपकी कृपा हो जाए, तो कौन संशय में रह सकता है? आपके चरणकमलों की कृपा द्वारा भट्टाचार्य महाशय, जो प्रोफेसर लोकनाथ न्यायभूषण के नाम से विख्यात हैं, तर्क के अंधकूप से मुक्त हो गये, और उन्होंने श्री गोविन्द दास क्षेत्रवासी नाम धारण कर वैष्णव धर्म की शरण ग्रहण कर ली, जो समस्त प्रकार के कष्टों का विनाश करता है। तो संशय नाश करने की आपकी क्षमता के लिए क्या असम्भव है? आइये, अब हम भगवान् हरि का यशोगान करते हैं और आज ही गिरी गोवर्धन की घाटी में जाते हैं।"

गोवर्धन की ओर जाते हुए हरिदास और प्रेमदास कीर्तन करते हैं

वार्ता समाप्त करते ही उन्होंने गोवर्धन की ओर जाते हुए तुरन्त ही भगवान् हरि का यशोगान और भावपूर्ण नृत्य करना प्रारम्भ कर दिया।

आगे बढ़ते हुए दोनों बाबाजी गाने लगे, और निकटवर्ती क्षेत्र का सौंदर्य ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो प्रकृति देवी उनके गीतों को सुनकर आनन्दपूर्वक मुस्कुरा रही हो। वसन्त ऋतु समाप्त हो रही थी तथा बसन्ती दक्षिणी लहर मन्द-मन्द बह रही थी। ब्राह्मण शिरोमणि व कमलपुष्प का देवता—सूर्य दोनों वैष्णवों पर कांतिपूर्वक चमकता हुआ प्रतीत हो रहा था, परन्तु वास्तव में वह उन पर अमृत वर्षा कर रहा था। हरि कीर्तन सुनकर अनुरक्त सूर्यदेव की पुत्री, यमुनादेवी ने मधुर ध्वनियाँ उत्पन्न कर समय को बाँध लिया। ऊँचे देवदार वृक्षों के पत्ते हवा में सरसराहट करते हुए भगवान् हरि की संकीर्तन टोली में पताकाओं की भाँति फहराते प्रतीत हो रहे थे। मार्ग में नृत्य करते हुए दोनों बाबाजी ऊँची छलाँगें लगाने लगे। वे कीर्तन में इतने निमग्न थे कि उन्हें पता ही नहीं चला कि कैसे मधुर रात्रि प्रात:काल में परिवर्तित हो गई। तब उन्होंने अपने कीर्तन और नृत्य को विराम दिया, उन्होंने गोवर्धन के किनारे से उदय होते सूर्य को पूर्व दिशा का गुणगान करते देखा।

गोवर्धन से अल्प दूरी पर अपने प्रात:कालीन नित्यकर्म समाप्त कर, वे दोपहर से पूर्व पण्डित दास बाबाजी की गुफा में प्रविष्ट हो गये।

❖❖❖

द्वितीय किरण

हरिदास और प्रेमदास बाबाजी गोवर्धन में पण्डित बाबाजी की गुफा में प्रवेश करते हैं, वे उनके साथ सभा मंच पर जाते हैं तथा बिरबम से आये एक बाबाजी कीर्तन करते हैं

पूर्ण रूप से वैष्णवों के रूप में सुसज्जित हरिदास और प्रेमदास पण्डित दास बाबाजी के आश्रम में पहुँचे। उनके मस्तक पर गोपीचन्दन चमक रहा था तथा उनके गले में तीन घेरे की तुलसी माला शोभायमान थी। दाएं हाथ से वे निरन्तर अपनी जप-थैली में पड़ी जप-माला पर निरन्तर हरिनाम ले रहे थे। उनके शरीर का नीचे का भाग कौपीन तथा बहिर्वस्त्र से ढका हुआ था, उनके सिर शिखा द्वारा सुशोभित थे तथा उनके अंग भगवान् के पवित्र नाम से अंकित थे। उनके होठों से दो नाम मुखरित हो रहे थे, "हरे कृष्ण, हरे कृष्ण।" उस रात वे सोये नहीं थे, क्योंकि वे लगभग १६ मील चलकर आये थे, परन्तु फिर भी वे थके या क्लान्त प्रतीत नहीं हो रहे थे। वैष्णव दर्शन की प्रबल अभिलाषा के कारण उन्होंने गुफा के प्रवेश द्वार पर लगी लोगों की भीड़ पर कोई ध्यान नहीं दिया।

यद्यपि पण्डित दास बाबाजी सामान्यत: अपनी गुफा में ही भजन करते थे, किन्तु अन्य साधुओं के साथ चर्चा करने के लिए उन्होंने कुछ कुटियां और एक मण्डप बनाया हुआ था, जो माधवी लताओं से ढका हुआ था। दोनों बाबाजी गुफा में प्रविष्ट हुए और पण्डित दास बाबाजी को प्रणाम किया। दोनों बाबाजी को देखकर पण्डित दास बाबाजी आनन्दविभोर हो गये। कुछ देर बाद, जब उन्होंने सुना कि अन्य साधु एकत्र हो रहे हैं, तब वे दोनों बाबाजी के साथ मण्डप में जाकर बैठ गये। उसी समय बिरबन से आया एक गायक वैष्णवों के सम्मुख बैठ गया और उनसे अनुमति लेकर गीतावली से (ललित राग में) गाने लगा :

नाकर्णयति सुहृदुपदेशं
माधव चारु पठनम् अपि लेशं
सीदति सखि मम हृदयम् अधीरं
यद भजम् इह नहि गोकुलवीरं
नालोकयमर्पितम् उरुहारं
प्रणमन्तम् च दयितमनुवारं
हन्त सनातन गुणमभियान्तं
किमधारयमहम् उरसिनकान्तं

"हाय! मैंने ललिता जैसी अपनी प्रिय सखी की सलाह नहीं मानी और माधव के रिझावों को तनिक भी नहीं सुना। हे सखी! क्योंकि मैंने इस कुंज में गोकुलपति की सेवा नहीं की, इसलिए मेरा हृदय टूट रहा है। हाय! माधव ने मुझे सर्वोत्तम माला अर्पित की और मुझे बारम्बार प्रणाम किया, परन्तु मैंने उनकी ओर देखा भी नहीं। अरे! मैंने नित्य दिव्य गुणों से सुशोभित अपने प्रियतम का आलिंगन क्यों नहीं किया?"

केवल कृष्ण की सेवा करने से ही शान्ति प्राप्त की जा सकती है, यम तथा नियम से प्रारम्भ होनेवाले योगाभ्यास से नहीं

कीर्तन सुनकर सभी अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और उन्होंने गायक को गले लगा लिया। कीर्तन समाप्त होते ही धीरे-धीरे अनेक साधु आ गये और बैठकर अनेक विषयों पर चर्चा करने लगे। उस समय हरिदास बाबाजी ने कहा, "केवल कृष्ण के भक्त ही भाग्यशाली हैं। वे कहीं भी रहें, वे उचित मार्ग पर हैं। हम उनके दासों के दास हैं।"

इस कथन का समर्थन करते हुए प्रेमदास बाबाजी बोले, "बाबाजी ने बिलकुल सही कहा है। श्रीमद् भागवत (१.६.३५) में ऐसा कहा गया है :

यमादिर्भियोगपथैः कामलोभहतो मुहुः।
मुकुन्द सेवया यद्वत् तथात्माद्धा न साम्यति॥

'यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा तथा समाधि—ये

अष्टांग योग हैं। निस्सन्देह इन सबके अभ्यास द्वारा शान्ति प्राप्त की जा सकती है, परन्तु इस प्रक्रिया में व्यक्ति काम तथा लोभ द्वारा उद्विग्न हो सकता है। तब शान्ति प्राप्त करने की अपेक्षा व्यक्ति अन्ततः पतन होने से पूर्व कुछ समय के लिए योगिक ऐश्वर्य भोग सकता है। परन्तु भगवान् कृष्ण की भक्ति में अवांछित फल की प्राप्ति का कोई भय नहीं है, क्योंकि कृष्ण के सेवक निश्चित रूप से शान्ति प्राप्त करते हैं।'"

जब सभा में उपस्थित एक योगी अर्चन की अपेक्षा योग की प्रधानता का समर्थन करता है, तब इस विषय पर सामंजस्य स्थापित करने का निवेदन किया जाता है

उस समय पण्डित दास बाबाजी की सभा में एक अष्टांग योगी उपस्थित था। यद्यपि वह एक वैष्णव था, उसने दीर्घकाल तक प्राणायाम का अभ्यास करके सिद्धि प्राप्त की हुई थी। फलस्वरूप, वह नवधा भक्ति की विधि की अपेक्षा अष्टांग योग को प्रधानता देता था। प्रेमदास बाबाजी के कथन पर थोड़ा असन्तुष्ट होकर वह बोला, "बाबाजी! आप योगशास्त्रों की अवहेलना मत कीजिए। योगी आहार तथा निद्रा त्यागकर दीर्घकाल तक जीवित रह सकते हैं। क्या आप उन सबकी भाँति गम्भीरतापूर्वक भक्ति के कार्य कर सकते हैं? अतएव आपको यह जान लेना चाहिए कि योग अर्चन से बढ़कर है।"

स्वाभाविक रूप से वैष्णव वाद-विवाद में रुचि नहीं रखते। तथापि, किसी को भी योगाभ्यास की तुलना में भक्ति के महत्त्व को कम करने की बात पसन्द नहीं आयी। सभी मौन रहे। कुछ अनादरित अनुभव करते हुए योगी ने पण्डित दास बाबाजी से अपना अभिमत प्रस्तुत करने की प्रार्थना की।

पण्डित दास बाबाजी योग की तुलना में भक्ति की श्रेष्ठता सिद्ध करते हैं

पहले तो पण्डित दास बाबाजी वाद-विवाद में प्रवेश नहीं करना चाह रहे

थे, परन्तु जब योगी ने बारम्बार उन्हें आश्वासन दिया कि वह उनका निष्कर्ष स्वीकार कर लेगा, तो बाबाजी ने कहना प्रारम्भ किया।

"सभी योगाभ्यासों तथा भक्ति का एकमात्र लक्ष्य भगवान् हैं, जो सभी जीवों द्वारा आराधित हैं। सामान्य रूप से, जीवों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जाता है—एक शुद्ध और दूसरे बद्ध। शुद्ध जीव वह है जो सभी भौतिक सम्बन्धों से मुक्त है तथा बद्धजीव वह है जो भौतिक संसर्ग में है। निश्चित रूप से, साधक एक बद्धजीव होता है, जबकि शुद्ध जीव को किसी साधना की आवश्यकता नहीं होती। एक बद्ध तथा शुद्ध जीव में आधारभूत अन्तर यह है कि शुद्ध जीव अपनी स्वरूप स्थिति में अवस्थित होता है। उसका एकमात्र कार्य आध्यात्मिक कार्यकलाप है, और उसका स्वभाव पूर्ण आनन्दमय है। बद्धजीव, भौतिक प्रकृति द्वारा बंधे होने के कारण भौतिक पदयुक्त कर्तव्यों में संलग्न होता है, जो मिश्रित भौतिक और आध्यात्मिक गुणों से युक्त होते हैं। जब कोई भौतिक पदयुक्त कर्तव्यों को त्यागकर शुद्ध कर्तव्यों को स्वीकार करता है, तो उस स्थिति को मुक्ति कहते हैं। विशुद्ध प्रेम आत्मा की स्वरूप स्थिति है, उसे मुक्ति से अलग नहीं माना जा सकता। योगाभ्यास द्वारा वांछित मुक्ति भक्ति द्वारा प्राप्त भगवत्प्रेम के समान ही है। अतएव दोनों प्रकार की विधियों का अन्तिम परिणाम एक ही है। इसी कारण शास्त्रों में सर्वश्रेष्ठ भक्त शुकदेव गोस्वामी को एक महान योगी तथा सर्वश्रेष्ठ योगी महादेव को एक महान भक्त के रूप में चित्रित किया गया है। योग तथा भक्ति में प्रमुख अन्तर यह है—योग के (कठोर) निष्ठापूर्वक अभ्यास द्वारा जब कोई मिथ्या उपाधियों को त्यागकर समाधि प्राप्त कर लेता है, तो वह अपनी स्वरूपावस्था प्राप्त कर लेता है जो है, प्रेम का उदय। तथापि, एक भय रहता है कि मिथ्या उपाधियों के त्याग की लम्बी प्रक्रिया में कोई साधक तुच्छ उपलब्धियों द्वारा आकृष्ट होकर परम लक्ष्य प्राप्त करने से पूर्व ही च्युत न हो जाए। दूसरी ओर, भक्ति में केवल प्रेम की ही चर्चा होती है। भक्ति मात्र भगवत्प्रेम के विज्ञान को विकसित करने की प्रक्रिया है। जब सभी कार्यकलाप अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करने के निमित्त हों, तब अवांछित परिणामों का कोई भय नहीं रहता। साधन ही साध्य हैं और साध्य ही साधन

हैं। इस कारण से भक्ति, योग के अभ्यास की अपेक्षा सरल है तथा सब प्रकार से स्वीकार की जानी चाहिए।"

योगपथ की निकृष्टता का प्रदर्शन

"योग के अभ्यास में भौतिक प्रकृति पर प्रभुत्व की प्राप्ति केवल एक क्षणिक परिणाम है। ऐसी स्थिति में परम लक्ष्य बहुत अधिक दूर हो सकता है, और समय-समय पर बाधाएँ आ सकती हैं। योगपथ पर हर कदम पर बाधाएँ आती हैं। सर्वप्रथम, यम और नियम का अभ्यास करते समय धार्मिकता का उदय होता है और यह तुच्छ फल प्राप्त करने पर साधक एक धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति के रूप में प्रसिद्ध हो जाता है, जबकि प्रेम की प्राप्ति के लिए उसने कोई प्रयास प्रारम्भ ही नहीं किया। दूसरा, आसन तथा प्राणायाम के दीर्घकाल तक अभ्यास के दौरान श्वास-प्रश्वास को नियंत्रित करके रोगमुक्त दीर्घायु प्राप्त हो जाती है। परन्तु फिर भी यदि प्रेम से कोई सम्बन्ध नहीं है, तो रोगमुक्त दीर्घायु कष्ट का एक स्रोत ही बनकर रह जाती है। तीसरे, यद्यपि प्रत्याहार की प्रक्रिया द्वारा इन्द्रिय संयम प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु यदि प्रेम का अभाव है तो इसे केवल शुष्क या तुच्छ वैराग्य ही कहा जायेगा। इसका कारण यह है कि परम लक्ष्य प्राप्त करने के लिए, आनन्दोपभोग तथा वैराग्य दोनों ही समान परिणाम प्रदान करते हैं। व्यर्थ का त्याग केवल पत्थर के समान कठोर हृदय बना देता है। चौथा, ध्यान, धारणा और समाधि के दौरान यद्यपि भौतिक विचार समाप्त हो जाते हैं, परन्तु यदि प्रेम जागृत नहीं हुआ है तो जीवात्मा अपना व्यष्टित्व खो देता है। यदि *अहं ब्रह्मास्मि* अर्थात् "मैं ब्रह्म हूँ" यह विचार शुद्ध प्रेम जागृत नहीं करता, तो वह उसके अस्तित्व के विनाश में परिवर्तित हो जाता है। इसलिए, कृपया यह विचार कीजिए : योग का परम लक्ष्य अच्छा है, परन्तु यह मार्ग कठिनाइयों से भरा है। आप एक वैष्णव होने के साथ ही एक योगी भी हैं, इसलिए आप पक्षपात के बिना मेरे वचनों को समझ सकते हैं।"

अभी पण्डित दास बाबाजी ने अपने कथन समाप्त किये भी नहीं थे कि सभी वैष्णव उद्‌गार करने लगे, "साधु! साधु!"

यद्यपि योगी बाबाजी प्रसन्न हुए, तथापि वे इन्द्रिय संयम के सम्बन्ध में भक्ति की अपेक्षा योग के महत्त्व का समर्थन करते हैं

योगी बाबाजी ने कहा, "बाबाजी, आपके निष्कर्ष वचन अत्यन्त उत्कृष्ट हैं, परन्तु मैं एक बात कहना चाहूँगा। योग सीखने से पूर्व, मैंने विधिवत् नवधा भक्ति की प्रक्रियाओं का अभ्यास किया था जो श्रवण तथा कीर्तन से प्रारम्भ होती हैं। परन्तु मैं स्पष्ट शब्दों में बता रहा हूँ कि प्रत्येक कार्य में मैं इन्द्रियतृप्ति का अवसर ढूँढता था। मैं माधुर्य रस के विषय में वर्णित वैष्णव उपदेशों के अनुसार स्वयं को मिथ्या उपाधियों से मुक्त नहीं कर पाया। मैं माधुर्य रस का आस्वादन करने के योग्य केवल प्रत्याहार के अभ्यास के बाद ही बन सका और अब मुझे इन्द्रिय भोग की कोई इच्छा नहीं है। मेरा स्वभाव पूर्णतया बदल गया है। अर्चन के मार्ग में भी प्राणायाम की व्यवस्था है, इसलिए मुझे लगता है कि भक्तियोग के उपदेशों में भी प्रत्याहार का अभ्यास देखा जा सकता है। इसलिए मेरा विचार है कि योग का अभ्यास आवश्यक है।

शुष्क चिन्तन या अभ्यास द्वारा साधक का निश्चित रूप से पतन हो जायेगा, यदि भक्ति के अंगों का प्रयोग इन्द्रियतृप्ति के लिए कर्मकाण्ड के रूप में किया जाए

योगी बाबाजी के वचन सुनने के बाद पण्डित दास बाबाजी ने कुछ समय के लिए विचार किया। फिर उन्होंने कहना प्रारम्भ किया, "हे बाबाजी, आप धन्य हैं क्योंकि प्रत्याहार का अभ्यास करते हुए भी आप रस तत्त्व को नहीं भूले। कई किस्सों में शुष्क चिन्तन तथा शुष्क अभ्यासों के कारण साधक का पतन हो जाता है, क्योंकि आत्मा स्वभाव से ही आनन्द से पूर्ण है, यह कभी भी शुष्कता का आस्वादन नहीं कर सकता। आत्मा सदैव प्रेम या आसक्ति की स्थिति में रहता है, इसीलिए जो बद्ध जीव अपनी यथार्थ स्थिति से पतित हो जाता है, वह अन्य किसी तुच्छ विषय के प्रति प्रेम या आसक्ति विकसित कर लेता है। इस कारण से आत्म तुष्टि की नगण्य सम्भावना रह जाती है और इस

कारण से भौतिक इन्द्रियतृप्ति प्रधान हो जाती है। जब आत्मा, जो इन्द्रियों का स्वामी है, अपने नित्य रस का अनुभव कर लेता है, तब उसका स्वाभाविक सहज आकर्षण जागृत हो जाता है और उसका मानसिक स्नेह विनष्ट हो जाता है। भक्ति का मार्ग पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति प्रेम की चर्चा करना है। इस मार्ग पर जैसे ही किसी की आसक्ति दृढ़ हो जाती है, वैसे ही इन्द्रियभोग के प्रयास स्वतः ही नष्ट हो जाते हैं। मुझे लगता है कि जब आपने भक्ति की क्रियाओं का अभ्यास प्रारम्भ किया, तब आपको किसी प्रामाणिक साधु का संग नहीं मिला। इस कारण आप भक्तिमयी सेवा की मधुरता का आस्वादन नहीं कर पाये। आपने नवधा भक्ति की प्रक्रियाओं का अभ्यास शुष्क या स्वार्थपूर्ण कर्मकाण्ड क्रियाओं के रूप में किया। परिणामस्वरूप आप अल्पमात्र भी दिव्य आनन्द का आस्वादन नहीं कर पाये। मेरा विचार है कि इसी कारण से आपकी इन्द्रितृप्ति की लालसा बढ़ गई। ऐसी स्थिति में योगाभ्यास द्वारा कुछ लाभ प्राप्त होने की सम्भावना है। साधक भक्त के लिए यह अनिवार्य है कि वह भक्तों के संग में भक्ति का आस्वादन करे। चाहे कोई भक्त सभी प्रकार के भौतिक इन्द्रियभोग करे, वह भोग और अधिक भोग करने की लालसा उत्पन्न नहीं करता। इन्द्रिय भोग एक भक्त के लिए भौतिक इच्छा से विरक्त होने का मुख्य कारण होता है।"

यह वचन सुनकर वैष्णव योगी ने कहा, "मुझे इस विषय में ज्ञान नहीं था, बाबाजी। मैं सायंकाल आकर अपने सन्देहों से मुक्त होने का प्रयास करूँगा। मैंने सुना है कि एक सज्जन आज कलकत्ता से आनेवाले हैं, इसलिए मैं अभी चलता हूँ। कृपया मुझ पर अनुग्रह करें।"

जैसे ही योगी बाबाजी बाहर गये, पण्डित दास बाबाजी की सभा समाप्त हो गई।

❖❖❖

तृतीय किरण

योगी बाबाजी के कुंज में मल्लिक महाशय, नरेन बाबू तथा आनन्द बाबू का आगमन

योगी बाबाजी पण्डित दास बाबाजी के आश्रम से निकलकर सूर्य की स्थिति द्वारा यह समझ सके कि अभी लगभग ग्यारह बज गये है। वे तेजी से अपने कुंज की ओर आगे बढ़ने लगे। तमाल वृक्ष के पास उन्होंने तीन बंगाली सज्जनों को आते देखा। वह समझ गये कि उनमें से एक मल्लिक महाशय थे। पहले से ही बाबाजी को उनके अपेक्षित आगमन का समाचार मिल गया था, इसीलिए उन्होंने अपना कुंज साफ कर रखा था। जैसे ही वे तीन सज्जन समीप आये, बाबाजी ने पूछा, "आप कहाँ रहते हैं? आप कहाँ जा रहे हैं?" उन तीनों में से एक अधिक आयु के थे—शायद साठ वर्ष के। उनके सिर के बाल तथा मूँछें पूर्ण रूप से सफेद थे। वे एक बारीक सूती कमीज, धोती और चादर के साथ पहने हुए थे। उनके हाथ में एक थैला था तथा वे चीनी जूते पहने हुए थे। अन्य दो व्यक्तियों की दाढ़ी थी और वे तीस या बत्तीस वर्ष के थे। वे चश्मा पहने हुए थे और उनके हाथों में छड़ी और थैले थे। उन सभी ने अपने सिरों पर छाते खोले हुए थे। वह बुद्धिमान सज्जन आगे आकर बोले, "हम सभी कलकत्ता से आये हैं। हम योगी बाबाजी के आश्रम जायेंगे। निताई दास बाबाजी ने उन्हें एक पत्र लिखा है।"

यह सुनकर योगी बाबाजी ने कहा, "तब तो आप मुझे ही ढूँढ रहे हैं। क्या आप मल्लिक महाशय हैं?" उस सज्जन ने कहा, "जी हाँ श्रीमान्।" बाबाजी ने हार्दिक रूप से उनका अभिवादन किया तथा उन्हें अपने कुंज में ले गये।

कुंज अत्यन्त पवित्र था। वहाँ वृक्षों से घिरे हुए तीन या चार कुटीर थे। वहाँ एक मन्दिर कक्ष था। बाबाजी ने अपने एक शिष्य को उनकी सेवा में नियुक्त किया और फिर उनके भोजन की व्यवस्था की। मानस-गंगा में स्नान

करने के बाद उन्होंने प्रसाद ग्रहण किया। भोजन समाप्त कर, वे पंचवटी* वृक्ष के नीचे बैठ गये और वार्तालाप करने लगे।

मल्लिक महाशय ने कहा, "बाबाजी महाशय! कलकत्ता में सभी आपका गुणगान करते हैं। हम आपके चरणकमलों में ज्ञानप्रकाश प्राप्त करने की आशा से आये हैं।"

बाबाजी प्रसन्नतापूर्वक बोले, "महाशय, आप एक महात्मा हैं। नित्यानन्द दास बाबाजी ने मुझे लिखा था कि आप जैसा शिक्षा का हिन्दू प्रेमी कलकत्ता में बिरला ही कोई दिखाई देता है। आपने अनेक योगशास्त्रों का अध्ययन तथा अभ्यास किया है।"

मल्लिक बाबू अपना परिचय देते हैं

मन्द मुस्काते हुए मल्लिक बाबू बोले, "यह मेरे लिए एक सुप्रभात है कि मैं आप जैसे एक योगी से मिला हूँ।"

ऐसा कहते हुए मल्लिक बाबू योगी बाबाजी के चरणों में गिर गये और कहने लगे, "बाबाजी, कृपया मेरे द्वारा किये गये अपराध के लिए मुझे क्षमा करें। जब मैं पहली बार आपसे मिला था, तब मैंने आपको प्रणाम नहीं किया। बाबाजी, आजकल कलकत्ता में पुराने रीति-रिवाज इतने खो रहे हैं कि हम अपने से बड़ों को मिलने पर उन्हें प्रणाम भी नहीं करते। अब मुझे इस एकान्त स्थान में आपके चरणों को स्पर्श करने का आनन्द प्राप्त करने का अवसर प्रदान करें। मेरा इतिहास यह है : अपने पूर्व के दिनों में मैं एक नास्तिक था। बाद में, जब मैंने ईसाइयों से शिक्षा प्राप्त की, तो मैंने सोचा कि उनका धर्म हमारे धर्म से बेहतर है। कई दिनों तक मैं गिरजाघर में प्रार्थना करने गया। इसके बाद मैंने राजा राम मोहन राय द्वारा प्रचारित नया धर्म, ब्रह्मवाद स्वीकार किया। इसके बाद मैंने कुछ दिन पिशाच विद्या, अतिन्द्रिय दृष्टि विद्या तथा सम्मोहन विद्या जैसी विदेशी कलाएँ सीखीं। उस कला का विधिवत् अभ्यास करने के लिए मैं पिछले वर्ष मैडम लॉरेन्स से मिलने मद्रास गया। उस कला

*पंचवटी वह स्थान होता है जहाँ पाँच प्रकार के वट वृक्ष होते हैं—अश्वत्थ, बिल्व, वट, धात्री तथा अशोक।

द्वारा मैं मृत लोगों को उनका स्मरण करके प्रकट कर सकता था। अल्प प्रयास द्वारा मैं दूरस्थ स्थानों से सूचनाएँ प्राप्त कर सकता था। मेरी सभी योग्यताओं को देखकर एक दिन नित्यानन्द बाबाजी ने मुझसे कहा, 'बाबू! यदि आप गोवर्धन में योगी बाबाजी से मिलो, तो आप अनेक आलौकिक शक्तियाँ अर्जित कर पाओगे।' तब से हिन्दू शास्त्रों में मेरा दृढ़ विश्वास उत्पन्न हो गया। मैं अब मांसाहार नहीं करता और सदैव शुद्ध रहता हूँ। इन आदतों के कारण मैंने और अधिक योग्यताएँ प्राप्त कर ली हैं। अब मैं अनेक हिन्दू नियम पालन करता हूँ। मैं गंगाजल पीता हूँ, मैं अहिन्दुओं द्वारा स्पर्श किया हुआ भोजन नहीं लेता और मैं प्रत्येक सुबह और शाम भगवान् से प्रार्थनाएँ करता हूँ।"

नरेन बाबू तथा आनन्द बाबू का परिचय

"मेरे साथ नरेन बाबू तथा आनन्द बाबू आये हैं। वे ब्रह्मवाद में श्रद्धा रखते हैं, परन्तु वे ऐसा स्वीकार करने में संकोच नहीं करते कि योगशास्त्रों में कुछ तथ्य है। मैंने उनके समक्ष योग के कुछ परिणाम प्रदर्शित किये हैं। अब उनका मुझ पर उतना ही विश्वास है, जितना अपने गुरु पर है। उनकी हिन्दू तीर्थों का भ्रमण करने की कोई इच्छा नहीं थी, जहाँ किसी को अनेक प्रकार की मूर्तिपूजाओं में प्रवृत्त होना पड़े। आज प्रसाद ग्रहण करते समय नरेन बाबू के चेहरे के भावों से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वे दुःख का अनुभव कर रहे थे। तथापि, मुझे लगता है कि शीघ्र ही उनका मेरी तरह ही हिन्दू शास्त्रों में विश्वास उत्पन्न हो जायेगा। मैं आपके चरणों की शरण ग्रहण करता हूँ। क्या आप मुझे राजयोग पर कुछ उपदेश देंगे?"

योगी बाबाजी भौतिकतावादियों के संग के प्रभाव से पतित हो जाने का भय करते हैं

मल्लिक बाबू की प्रार्थना सुनकर योगी बाबाजी ने थोड़ी खुशी तथा दुःख का एक विस्मयकारी भाव प्रदर्शित किया। "बाबूजी, मैं विरक्त हूँ और मेरा सांसारिक जीवन से अधिक सम्बन्ध नहीं है। मैं बद्रिकाश्रम में एक गुफा में रहता था और कुम्भक के अभ्यास द्वारा मैंने लगभग एक वर्ष तक मुश्किल से

ही कुछ खाया। अचानक मेरी व्यासदेव के महान पुत्र, शुकदेव से भेंट हुई जिन्होंने मुझे व्रज वापस लौटने के लिए कहा। तब से मैं व्रजवासियों के संग से थोड़ा बहुत भौतिकतावादी हो गया हूँ। फिर भी, मैं उन लोगों के साथ नहीं रहता जो सांसारिक जीवन से अत्यधिक आसक्त हैं। आपकी वेशभूषा, खानपान तथा संग बहुत कुछ अत्यधिक सांसारिक लोगों जैसा है। मैं चिंतित हूँ; यदि मैं भौतिकतावादी लोगों का संग करूँगा, तो मैं योगपथ से गिर सकता हूँ।"

मल्लिक महाशय की प्रतिज्ञा, वेश परिवर्तन तथा पवित्र नाम स्वीकार करना, और साथ ही ब्रह्मवाद में श्रद्धा के कारण नरेन तथा आनन्द बाबू का स्वतन्त्र व्यवहार

बाबाजी के वचन सुनकर मल्लिक बाबू ने कहा, "मैं आपके आदेशानुसार वेश तथा खान-पान की आदतें स्वीकार करने के लिए तैयार हूँ, परन्तु मैं अपने दो साथियों का त्याग कैसे करूँ? मेरी योजना यह है—कृपया आप नरेन बाबू तथा आनन्द बाबू को एक या दो दिन के लिए यहाँ रहने दें और फिर वे वृन्दावन में बंगिय समाज में जा सकते हैं। मैं छः मास तक आपके चरणों में रहकर योगाभ्यास करूँगा।"

नरेन बाबू और आनन्द बाबू ने उस प्रस्ताव को पूर्ण रूप से स्वीकार किया और कहा, "दो दिन के भीतर हम वृन्दावन चले जायेंगे, जहाँ हमारे सेवक हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।" यह योजना निर्धारित हो गई।

इसके बाद नरेन बाबू और आनन्द बाबू चारों ओर के प्राकृतिक सौंदर्य को देखने चले गये। बाबाजी को अकेला देखकर मल्लिक बाबू ने उनसे कहा, "बाबाजी, मैंने उन्हें यहाँ लाकर ठीक नहीं किया, क्योंकि उनकी वेशभूषा देखकर सभी उनकी उपेक्षा करते हैं। यदि आप मुझ पर कृपा करें, तो मैं शीघ्र ही सभी अनार्यों का संग त्याग दूँगा।"

बाबाजी ने कहा, "वैष्णवों का वेश और व्यवहार देखकर बहुत से लोग उनका संग छोड़ देते हैं। मेरी ऐसी आदत नहीं है। मुझे यवनों का संग करने में भी कोई आपत्ति नहीं है। वैष्णव कभी भी अन्य श्रेणी के लोगों से ईर्ष्या

नहीं करते, फिर भी सुविधा के लिए मुझे लगता है कि वैष्णव वेश और व्यवहार अपनाना चाहिए।"

एक दिन के उपदेश के बाद ही वैष्णव वेश शायद ही कोई स्वीकार करता है, फिर भी या तो पुराने संस्कारों के कारण या योगी बाबाजी का विश्वास जीतने के कारण मल्लिक बाबू ने तुरन्त अपने पाँच रुपये के चमड़े के जूते त्याग दिये। उन्होंने अपने गले में तुलसी की माला पहन ली और मस्तक पर तिलक धारण कर लिया और फिर बाबाजी को प्रणाम किया। बाबाजी ने उन्हें माला पर धीमे स्वर में हरिनाम जप करने की अनुमति दी, और मल्लिक महाशय ने यह अभ्यास प्रारम्भ कर दिया।

जब नरेन बाबू और आनन्द बाबू भ्रमण करके लौटे और मल्लिक महाशय की स्थिति देखी, तो वे एक-दूसरे से बोले, "यह कैसी मानसिकता है? ऐसा लगता है कि हमारा यहाँ रहना ठीक नहीं है। यद्यपि यह एक महान पण्डित और जिज्ञासु है, तथापि यह अधीर है। यह कैसा नया वेश है? और एक ही दिन में ऐसा क्यों? चलो, देखते हैं क्या होता है। हम अपने पवित्र ब्रह्मवाद का अनादर नहीं करेंगे। फिर भी, हम उन्हें देखकर मानव चरित्र, स्वभाव का निरीक्षण करेंगे।"

नरेन बाबू और आनन्द बाबू को निकट आते देखकर मल्लिक महाशय कुछ अधीर हो गये और बोले, "नरेन! देखो, मैं क्या बन गया हूँ। आनन्द! क्या तुम नाराज हो?"

परन्तु नरेन और आनन्द दोनों बोले, "आप हमारे सम्मान के पात्र हैं। हम आपके किसी भी कार्य से अप्रसन्न नहीं हैं।"

जब योगी बाबाजी कुछ आध्यात्मिक जिज्ञासा करते हैं, तो ब्रह्मवादी नरेन बाबू हिन्दू धर्म के दोषों को प्रकट करते हैं

बाबाजी ने कहा, "आप विद्वान तथा धार्मिक प्रवृत्ति के हैं। परन्तु क्या आपने परम सत्य की विवेचना की है?"

नरेन बाबू एक ब्रह्मवादी प्रचारक थे। वह प्रायः ब्रह्मवादियों को प्रचार में

सहायता करते थे। बाबाजी का प्रश्न सुनकर उन्होंने अपना चश्मा पहना और कहना प्रारम्भ किया।

"पिछले कुछ काल से भारत कुछ दोषों द्वारा दूषित हो गया है। ये दोष हैं—(१) जातिभेद या जातिवाद—प्रत्येक मनुष्य एक ही पिता की सन्तान है। सभी भाई-भाई हैं। प्रगति करने की अपेक्षा, भारतीय लोग जातिवाद के कारण धीरे-धीरे पतित होते जा रहे हैं। विशेष रूप से उन्नत यूरोपीय जाति के लोग उन्हें अत्यन्त नापसन्द करते हैं। (२) निराकार ब्रह्म को छोड़ने तथा अनेक काल्पनिक देवी-देवताओं की उपासना करने के कारण वे भगवान् से बहुत दूर चले गये हैं। (३) मूर्तिपूजा। (४) व्यर्थ ही उपवास जैसे निरर्थक व्रत करना। (५) धूर्त ब्राह्मणों को व्यर्थ ही सम्मान देना। (६) घृणित आदतों के कारण हमारे सभी भाई धीरे-धीरे नरक की ओर जा रहे हैं। (७) पुनर्जन्म में विश्वास तथा ऐसा मानना कि सभी पशु जीवात्माएँ हैं। (८) माँसाहार का त्याग। उचित भोजन की कमी के कारण उनके शरीर कमजोर हो जाते हैं और वे राज्य पर शासन करने में अयोग्य हो जाते हैं। (९) पतिविहीन दुर्बल स्त्रियाँ विधवा होकर शोषण की परिस्थितियों की शिकार हो जाती हैं। भारत को इन सभी कुरीतियों से मुक्त करवाने के लिए, परोपकारी राजा राम मोहन राय द्वारा बोया गया पवित्र ब्रह्मवाद का बीज एक वृक्ष में परिवर्तित हो गया है, जो आजकल फल दे रहा है। हम निराकार ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि सभी भारतीय अज्ञान के अंधकार से मुक्त हो जाएँ और ब्रह्मवाद को स्वीकार कर लें, जैसाकि उपनिषदों में सिखाया गया है। बाबाजी महाशय! वह दिन कब आयेगा जब हम सभी मिलकर प्रार्थना करेंगे?"

नरेन बाबू लड़खड़ाते स्वर में बोले और उसके बाद शान्त हो गये। उस क्षण कोई भी कुछ और नहीं बोला।

बाबाजी कुछ दृढ़तापूर्वक बोले, "हाँ, सन्देह रखने की अपेक्षा कुछ ईशभावना विकसित करना बेहतर है। एक बार मैं कानपुर जाते हुए मार्ग में वाल्मीकि मुनि के आश्रम में रुक गया। वहाँ एक सार्वजनिक स्थान पर मैंने एक अंग्रेज व्यक्ति से ऐसी बातें सुनीं, उसके बाद मैंने ऐसी बात कभी नहीं सुनी।"

जब बाबाजी कुछ आधारभूत प्रश्न पूछते हैं, तो आनन्द बाबू ब्रह्मवाद की शिक्षाओं पर आधारित उत्तर देते हैं

बाबाजी आगे बोले, "ठीक है, मैं कुछ आधारभूत विषयों के बारे में पूछना चाहूँगा : (१) भगवान् का स्वरूप क्या है? (२) उनका जीवात्माओं के साथ क्या सम्बन्ध है? (३) उन्हें प्रसन्न करने की विधि क्या है? (४) यदि भगवान् प्रसन्न हो जाएँ, तो जीवात्मा के साथ क्या होता है? (५) भगवान् की उपासना क्यों की जाती है?"

आनन्द बाबू एक अच्छे परिवार के आधुनिक व्यक्ति थे। उन्होंने अपने यज्ञोपवीत का त्याग कर दिया था और वे ब्रह्मवाद दर्शन के प्रचारक बन गये थे। जब उन्होंने बाबाजी के वैज्ञानिक प्रश्नों को सुना, तो वे उत्साहित होकर खड़े हो गये। वे बोले, "हे महात्मा! कृपया सुनें। ब्रह्मवाद के भण्डार में सभी प्रश्नों के उत्तर हैं। ब्रह्मवाद के पास कोई शास्त्र नहीं है, इस कारण से उसे निम्न मत समझिये। वे सभी धर्म जो किसी शास्त्र को अत्यन्त मान्यता देते हैं, कुछ पुराने दोषों से युक्त हैं। ब्रह्मवाद के समुद्र की तुलना में आपका वैष्णव दर्शन एक खेत में स्थित एक छोटे तालाब के समान प्रतीत होता है। उस तालाब में मोती नहीं मिलते, मोती तो समुद्र से ही प्राप्त होते हैं। यद्यपि हमारे पास अनेक ग्रन्थ नहीं हैं, तथापि ब्रह्मधर्म नामक हमारा ग्रन्थ सभी प्रश्नों का उत्तर ऐसे देता है, जैसे किसी के पास अंगुलियों की नोक पर समस्त ज्ञान हो।"

आनन्द बाबू ने अपना थैला खोला और अपना चश्मा पहन लिया। उन्होंने अपने थैले में से एक छोटी पुस्तक निकाली और पढ़ना प्रारम्भ किया : "(१) भगवान् निराकार हैं। (२) जीवात्माओं से उनका सम्बन्ध एक पिता और पुत्र की भाँति है। (३) वे उन कार्यों द्वारा सन्तुष्ट होते हैं, जो उन्हें प्रिय हैं। (४) यदि ईश्वर प्रसन्न हो जाएँ, तो हम असीमित आनन्द प्राप्त करते हैं। (५) वे हमें माता का दूध प्रदान करवाते हैं, खेतों में अनाज और जल स्रोतों में मछली देते हैं। इसलिए हम उनके प्रति कृतज्ञ हैं और उनकी उपासना करने के लिए अनुगृहीत हैं। आपने देखा, किस प्रकार हमारे धर्माचार्यों ने कुछ शब्दों

में ही अति अनिवार्य तथ्यों को प्रदर्शित किया है। इन पाँच विषयों का वर्णन करने के लिए आपने महाभारत जैसे विस्तृत ग्रन्थ की रचना कर दी होती। राजा राममोहन राय धन्य हैं! उनकी जय हो! ब्रह्मवाद की पताका को संसार के एक कोने से दूसरे कोने तक लहराने दो।"

दाढ़ी युक्त चेहरेवाले आनन्द बाबू के गम्भीर दृष्टिपात को देखकर बाबाजी मुस्कुराए और बोले, "आपका भला हो। परम भगवान् एक दिन आपको आकर्षित कर लें। आज आप मेरे अतिथि हैं। मुझे ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए जिससे आप उद्विग्न हो जाएँ। यदि भगवान् गौरांग की इच्छा हो, तो हम शीघ्र ही इस सम्पूर्ण विषय की चर्चा करेंगे।"

बाबाजी के विनम्र वचन सुनकर नरेन बाबू और आनन्द बाबू अपना चश्मा उतारकर मुस्कुराए और बोले, "जैसा आप कहें। हम धीरे-धीरे आपके सभी निष्कर्षों को सुनेंगे।"

मल्लिक बाबू के प्रश्नों के उत्तर देते हुए योगी बाबाजी राजयोग की तुलना हठयोग से करते हैं

जब सभी शान्त हो गये, तो मल्लिक महाशय ने कहना जारी रखा, "बाबाजी महाशय, कृपया राजयोग का वर्णन कीजिए।"

योगी बाबाजी ने कहा, "ठीक है," और बोलना प्रारम्भ किया।

"दार्शनिकों तथा पौराणिक विद्वानों द्वारा अभ्यास किये जाने वाले योग को राजयोग कहते हैं। तान्त्रिक पण्डितों द्वारा निर्देशित योग को हठयोग कहते हैं। हठयोग में मेरी अल्प रुचि है, क्योंकि यह वैष्णव धर्म के अभ्यास में एक बाधा है। शाक्त और शैव तन्त्रों में, और साथ ही उन तन्त्रों से लिखे गये शास्त्रों, जैसे हठयोग दीपिका और योगचिन्तामणि में भी हठयोग का वर्णन किया गया है। उन शास्त्रों में मैं शिवसंहिता और घेरण्ड संहिता को श्रेष्ठ मानता हूँ। काशी में निवास करते हुए मैंने उन शास्त्रों का अध्ययन तथा उनमें से कुछ का अभ्यास किया था, परन्तु अन्ततः मैं यह समझ पाया कि योग की उस विधि द्वारा केवल कुछ शारीरिक लाभ ही प्राप्त किया जा सकता है। उस विधि द्वारा समाधि प्राप्त करना सरल नहीं है।"

हठयोग के विज्ञान का विश्लेषण

"यह संक्षेप में हठयोग का विज्ञान है :

(क) पुण्य तथा पाप कर्मों के कारण जीवात्मा को शरीर रूपी पात्र प्राप्त होता है। अपने कर्मानुसार जीवात्मा उस पात्र में जन्म लेता है और मृत्यु प्राप्त करता है।

(ख) वह पात्र, एक बिना पकाये हुए घड़े के रूप में, पकाने के बाद भी उपयोगी नहीं होता। भौतिक जगत् के समुद्र में सदैव खतरे की सम्भावना रहती है। हठयोग द्वारा वह पात्र अग्नि द्वारा शुद्ध हो जाता है।

(ग) सात प्रकार के शारीरिक शुद्धीकरण होते हैं :

(१) शोधन, अथवा छः क्रियाओं द्वारा शुद्धीकरण;
(२) दृढ़ीकरण, अथवा आसनों का अभ्यास करके बलवान् बनना;
(३) स्थिरीकरण, अथवा मुद्राओं के अभ्यास द्वारा स्थिर बनना;
(४) धैर्य, अथवा प्रत्याहार के अभ्यास द्वारा विरक्त बनना;
(५) लाघव, अथवा प्राणायाम द्वारा हल्का हो जाना;
(६) प्रत्यक्ष, अथवा ध्यान द्वारा साक्षात् अनुभूति तथा
(७) निर्लिप्तीकरण, अथवा समाधि द्वारा सांसारिक आसक्तियों से मुक्त हो जाना।

(ग-१) शुद्धीकरण की छः क्रियाएँ हैं :

(१) धौति, (२) वस्ति, (३) नेति, (४) लौलिकी, (५) त्राटक, तथा (६) कपाल भाति—इन छः क्रियाओं द्वारा शरीर शुद्ध हो जाता है।

(१) धौति, अथवा शोधन चार प्रकार का है :

(क) अन्तर्धौति, या आन्तरिक शोधन—वातसार, वायु द्वारा; वारिसार, जल द्वारा; बहिसार और बहिष्कृति, वायु द्वारा भी, ये चार प्रकार की अन्तर्धौति हैं।

(ख) दन्त धौति अथवा दाँतों का शोधन—दन्तमूल अथवा दाँतों के मूल; जिह्वा मूल अथवा जिह्वा का मूल; कर्णरन्ध्र द्वय अथवा दो कान; तथा कपाल रन्ध्र अथवा माथे की मालिश ये दन्त धौति नामक पाँच प्रकार की धौति हैं।

(ग) हृद्धौति अथवा हृदय का शुद्धीकरण—दण्डद्वारा, दण्ड के द्वारा; वमन द्वारा, उलटी करके; तथा वस्त्र द्वारा, वस्त्र से, ये तीन प्रकार की हृद्धौति हैं।

(घ) मलधौति अथवा मल की सफाई—दण्ड, डण्डे द्वारा; अंगुली, अंगुली के द्वारा; और जलद्वारा, जल के द्वारा—ये मल को शुद्ध कर देंगे।

(२) वस्ति, उदर का निर्मलीकरण दो प्रकार का है :

(क) जलवस्ति, अथवा नाभि तक जल में बैठना और संकुचन करना, तथा

(ख) शुष्कवस्ति, शुष्क संकुचन।

(३) नेति, एक वस्त्र को नाक में से डालकर मुख से बाहर निकालना (इस वस्त्र की लम्बाई अंगूठे के अग्रभाग से तनी हुई छोटी अंगुली के अग्रभाग तक की हो)।

(४) लौलिकी, सिर को शीघ्रतापूर्वक एक कोने से दूसरी ओर घुमाना।

(५) त्राटक, आँख झपकाए बिना अश्रु आने तक एक बिन्दू पर टकटकी लगाकर देखना।

(६) कपालभाति, या भालभाति (एक नासिका से श्वास खींचना तथा दूसरी नासिका से श्वास निकालना, फिर अन्य द्वारा) तीन प्रकार का है : (क) अव्युत्क्रम, (ख) व्युत्क्रम और (ग) शीत्क्रम।

(ग-२) आसनों के अभ्यास द्वारा बलशाली बनना :

३२ प्रकार के आसनों का निर्देश है। पात्र को स्वच्छ करने के बाद, शरीर को सशक्त बनाने के लिए आसन का अभ्यास किया जाता है। यह हठयोग की द्वितीय प्रक्रिया है। सिद्धासन, पद्मासन, भद्रासन, मुक्तासन, वज्रासन, स्वस्तिकासन, सिंहासन, गोमुखासन, वीरासन, धनुरासन, मृतासन, गुप्तासन, मत्स्यासन, मत्स्याग्रासन, गोरक्षासन, पश्चिमोत्तानासन, उत्कटासन, शकटासन, मयुरासन, कुक्कुटासन, कुर्मासन, उत्तान कुर्मासन, मण्डुकासन, उत्तान मण्डुकासन, वृक्षासन, गरुडासन, वृषासन, शलभासन, मकरासन, उष्ट्रासन, भुजंगासन तथा योगासन। इसमें से किसी भी आसन का अभ्यास किया जा सकता है।

(ग-३) मुद्राओं द्वारा स्थिर बनना :

आसन के अभ्यास द्वारा पात्र बलशाली बन जाता है, और इसके बाद मुद्राओं के प्रयोग द्वारा यह स्थिर हो जाता है। बहुत सी मुद्राओं में से २५ मुद्राओं का सदैव और सर्वत्र सुझाव दिया जाता है। ये मुद्राएँ हैं—महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डीयन, जालन्धर, मूलबन्ध, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, विपरीतकरणी, योनिमुद्रा, वज्रनि, शक्तिचालनी, तडागी, माण्डुकी, शाम्भवी, अधोधारणा, उन्मनी, वैष्वानरी, वायवी, नभोधारणा, अश्विनी, पाशिनी, काकी, मातंगी और भुजंगिनी। प्रत्येक मुद्रा द्वारा एक विशिष्ट लाभ होता है।

(ग-४) प्रत्याहार द्वारा उदासीन बनना :

मुद्राओं के अभ्यास द्वारा पात्र स्थिर हो जाता है, तत्पश्चात् प्रत्याहार द्वारा यह पात्र अविचलित हो जाता है। जब मन क्रमशः इन्द्रियविषयों से हटा लिया जाता है और संतुलित कर लिया जाता है, उसे ही प्रत्याहार कहा जाता है।

(ग-५) प्राणायाम करने से साधक हल्का हो जाता है और नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं, फिर कोई कुम्भक, ध्यान, धारणा तथा समाधि की ओर आगे बढ़ सकता है।

प्रत्याहार का अभ्यास करने से मन नियंत्रित हो जाता है और पात्र अविचलित हो जाता है। उसके बाद प्राणायाम के अभ्यास द्वारा शरीर को हल्का बनाया जाता है। प्राणायाम के अभ्यास के लिए स्थान तथा समय का ध्यान रखना चाहिए। भोजन के विषय में इसमें कुछ नियम हैं। प्रारम्भ करते समय ही इन सब नियमों को जान लेना चाहिए। सर्वप्रथम नाड़ियों का शोधन करना अनिवार्य है। नाड़ियों का शोधन कर लेने के बाद कुम्भक का अभ्यास करना चाहिए। नाड़ियों का शोधन करने में लगभग तीन मास लगते हैं। ये आठ प्रकार के कुम्भक हैं—सहित, सूर्यभेदी, उद्वायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्छा और केवली। जब नियमित रूप से रेचक, पूरक और कुम्भक का अभ्यास किया जाता है, तब साधक केवल कुम्भक के स्तर पर आ जाता है।

जब साधक प्राणायाम के अभ्यास द्वारा हल्का हो जाता है, तब वह ध्यान की ओर जा सकता है और उसके बाद धारणा तक और अन्त में समाधि में। मैं उचित समय आने पर इन विषयों का विस्तृत वर्णन करूँगा।

हठयोग पर निष्कर्ष रूप टिप्पणी

"यदि कोई इस विधि से हठयोग का अभ्यास करता है, तो वह अनेक अद्‌भुत चमत्कार कर सकता है। परिणाम देखकर ही कोई इस पर विश्वास कर सकता है। तांत्रिक योग के अंगों के बारे में भिन्न-भिन्न मत व्यक्त करते हैं। उदाहरणस्वरूप, निरुत्तर तन्त्र के चतुर्थ परिच्छेद में ऐसा कहा गया है,

आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा।
ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि वदन्ति षड्॥

'आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि योग के छः अंग हैं।' यद्यपि दत्तात्रेय तथा अन्यों के कुछ मत भिन्न हैं, तथापि लगभग सभी के विचारानुसार हठयोग का उद्‌भव एक ही है। हठयोग के अभ्यास द्वारा मुझे सन्तोष प्राप्त नहीं हुआ, क्योंकि मुद्राओं के अभ्यास द्वारा अनेक प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं और इस कारण साधक और आगे प्रगति नहीं कर पाता। विशेष रूप से धौति, नेति इत्यादि की छः प्रक्रियाएँ सम्पन्न करनी इतनी कठिन हैं कि जब तक गुरु समीप न हों, तो कई बार मृत्यु हो जाने का भय

रहता है। जब मैं काशी से बद्रिकाश्रम गया था, तो एक राजयोगी ने कृपावश मुझे राजयोग सिखाया था। तब से मैंने हठयोग का त्याग कर दिया है।

ऐसा कहने के बाद बाबाजी बोले, "आज के लिए इतना पर्याप्त है, मैं राजयोग पर उपदेश कल दूँगा। दिन लगभग समाप्त हो चुका है और हम पूज्यपाद पण्डित दास बाबाजी के आश्रम में जाना चाहते हैं।"

योगी बाबा के उपदेशों के प्रभाव से नरेन तथा आनन्द बाबू की वैष्णव धर्म में श्रद्धा विकसित हो जाती है

योगी बाबाजी द्वारा हठयोग का वर्णन करने पर नरेन बाबू और आनन्द बाबू ने उनकी गम्भीरता का अवलोकन किया और आदर भाव से ध्यानपूर्वक उनके वचनों को सुनने लगे।

उन उपदेशों को सुनते हुए उनमें बाबाजी के प्रति कुछ श्रद्धा उत्पन्न हो गई और अपने तुच्छ ज्ञान के प्रति कुछ अनादर उत्पन्न हुआ। वे बोले, "बाबाजी, हम आपके साथ आध्यात्मिक विषयों की चर्चा करके प्रसन्नता का अनुभव करेंगे। इसलिए हमने कुछ दिनों तक यहीं रहने का निश्चय किया है। हमें आप के वचनों में विशेष श्रद्धा हो गई है।"

बाबाजी ने कहा, "यदि भगवान् की कृपा हो, तो इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आप सभी शीघ्र ही कृष्ण के शुद्ध भक्त बन सकते हैं।"

नरेन बाबू ने कहा, "मूर्तिपूजा को स्वीकार करना हमारे लिए सम्भव नहीं है, परन्तु अब हम यह नहीं अनुभव करते कि वैष्णव पूर्ण रूप से सारहीन है। अपितु, उन्हें ब्रह्मवाद के अनुयायियों की अपेक्षा परम सत्य का अधिक ज्ञान है। किन्तु दुर्भाग्यवश, यद्यपि वे परम सत्य को समझते हैं, फिर भी वे मूर्तिपूजा को नहीं त्यागते—मैं नहीं जानता क्यों। यदि वैष्णव धर्म में मूर्तिपूजा न होती, तो उसका ब्रह्मवाद से एकत्व हो जाता और हम आपको एक वैष्णव स्वीकार करने में संकोच न करते।"

बाबाजी अत्यन्त गम्भीर हो गये। वे जानते थे कि युवा लोगों को भक्ति का मार्ग कैसे दिखाया जाये। इसलिए उन्होंने कहा, "आज इन विषयों पर बात नहीं करते।"

बाबाजी की बुद्धिमत्ता और भक्ति से मुग्ध होकर मल्लिक महाशय शान्त हो गये। हठयोग की व्याख्या पर मनन करते हुए उन्होंने सोचा, "हाय! हम कैसे मूर्ख हैं! मैं वशीकरण, पिशाचविद्या तथा हठयोग पर कुछ अधिक विस्तार, जैसी तुच्छ वस्तुओं के लिए मैडम लॉरेन्स के पास मद्रास गया। मैंने इतना महान् कृपाशील योगी आजतक नहीं देखा। नित्यानन्द दास की कृपा से, निस्सन्देह मैं शुभ दिन देख रहा हूँ।"

कुछ दिनों तक नरेन बाबू और आनन्द बाबू ने बाबाजी के साथ अनेक आध्यात्मिक विषयों की चर्चा की। परिणामस्वरूप, उनकी वैष्णव धर्म में गहरी श्रद्धा विकसित हो गई। वे भक्ति के विज्ञान को बहुत सीमा तक समझ गये। इससे पहले वे वैष्णव धर्म के सूक्ष्म तथ्यों को नहीं जानते थे। नरेन बाबू अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से थिओडोर पार्कर* द्वारा निर्देशित शुद्ध भक्ति का अर्थ समझ गये। आनन्द बाबू ने अनेक अंग्रेजी पुस्तकों में शुद्ध भक्ति के विषय में पढ़ा हुआ था, परन्तु वे प्राचीन वैष्णव दर्शन में इसके वर्णन को देखकर थोडा चकित हो गये। फिर भी, वे दोनों तर्क करने लगे कि वे लोग जो शुद्ध भक्ति की इतनी उच्च सीमा तक चर्चा कर सकते हैं, वे किस प्रकार मूर्तियाँ तथा राम और कृष्ण जैसे मानवों की उपासना कर सकते हैं।

एक दिन योगी बाबाजी ने कहा, "आइये, हम सभी पण्डित दास बाबाजी के दर्शन करने चलें।" दिन ढलते ही वे सभी पण्डित दास बाबाजी की गुफा की ओर निकल पड़े।

❖❖❖

*पारकर थिओडोर (१८१०-६०) अमरीकी प्रचारक और समाज सुधारक, मस्सचुसेट्स केलेक्सिंगटन में जन्मे थे। उनके तर्कवादी दृष्टिकोण जो उन्हें रूढ़िवादी एकात्मवादियों से भिन्न करते हैं, 'अ डिस्कॉर्स ऑफ मैटर्स पर्टेनिंग टु रिलिजन' (१८४१) में वर्णित हैं। पार्कर का ईसाई मत अलौकिकता से विपरीत था, उनका दर्शन अन्तर्ज्ञानात्मक तथा दिव्य था। वास्तव में वे नव इंग्लैड के अध्यात्मवादियों के नेता थे। उनका अध्यात्म मत आस्तिकतावादी था, जो ईश्वर को नैतिक मूल्यों तथा अमरत्व की चेतना के निश्चित लक्षण के रूप में स्वीकार करता है।

चतुर्थ किरण

मल्लिक महाशय तथा दोनों बाबू योगी बाबाजी के साथ गोवर्धन गुफा में जाते हैं तथा मार्ग में वे एक गीत सुनते हैं

दिन लगभग समाप्त हो गया था। सूर्य की गर्मी कम हो गई थी। पश्चिम से मन्द पवन बह रही थी। बहुत से लोग तीर्थयात्रा के लिए बाहर आये हुये थे। कुछ तीर्थयात्री महिलाएँ चलते हुए यह गीत गा रहीं थीं :

त्यज रे मन हरि विमुख लोक संग
जाक संग हि, कुमति उपजतहि,
भजन हि पड़त विभंग।

सतत असत पथ, लेई यो यायत,
उपयात कामिनीसंग
शमन दूत, परमायु परखत,
दूर हि नेहारत रंग॥

अतएव से हरिनाम सार परम मधु
पान करह छोड़ी ढंग, कह माधहरिचरणसरोरूहे
माटी रहु जनु भृंग॥

"हे प्रिय मन, कृपया उन लोगों का संग त्याग दे, जो हरिविमुख हैं। उनका संग दुर्विचार उत्पन्न करता है जिस कारण भक्ति का नाश हो जाता है। ऐसा संग किसी को भी भौतिकतावादी जीवन तथा स्त्रीसंग की ओर ले जाता है। ऐसे लोगों की आयु क्षीण होते देख यमराज के सेवक, यमदूत आनन्दित होते हैं। इसलिए सब प्रकार का कपट छोड़ दो और पवित्र नामों के दिव्य अमृत रस का पान करो। जिस प्रकार मधुमक्खी कमल पुष्प में निमग्न रहती है, उसी प्रकार भगवान् हरि के चरणकमलों में निमग्न रहो।"

गीत सुनते हुए, मल्लिक महाशय ने नरेन बाबू और आनन्द बाबू की ओर तिरछी नजर डाली, और उनके मन थोड़े बदल गये। नरेन बाबू कुछ परिहासपूर्वक बोले, "आज के बाद हम कभी भी वैष्णव दर्शन की अवहेलना नहीं करेंगे। मुझे वैष्णव धर्म और ब्रह्मवाद में कोई अन्तर नहीं दिखता। केवल मैं मूर्तिपूजा का उद्देश्य नहीं समझ पा रहा।" यह सुनकर कोई भी कुछ नहीं बोला। वे सब आगे बढ़ते रहे। योगी बाबाजी ने कहा, "आइये, हम भी चलते-चलते गाते हैं।" बाबाजी ने गाना प्रारम्भ किया, और वे सब भी साथ गाने लगे :

हरि हरि! कबे वृन्दावनवासी
निरखिब नयने युगलरूपराशि
तेजिया शयनसुख विचित्र पालंक
कबे व्रजेर धूलाते धूसर हबे अंग
षड्रसभोजन दूरे परिहरी
कबे यमुनार जल खाब कर पुरि
नरोत्तम दासे कय करि परिहार
कबे वा एमन दशा हइबे आमार

" हे हरि! मैं कब वृन्दावनवासी बन पाऊँगा और सदैव श्री श्री राधा और कृष्ण के सुन्दर स्वरूप के दर्शन करूँगा? आरामदायक पलंग पर सोने का आनन्द त्यागकर कब मेरा शरीर व्रज की धूलि से ढक जायेगा? कब मैं भोजन में छः प्रकार के रसों का स्वाद त्यागकर अपने दोनों हाथों से यमुना का जल पीऊँगा? नरोत्तम दास कहते हैं, कब मैं इन सब वस्तुओं को त्यागकर उस दिव्य स्थिति तक पहुँचूंगा?"

इस प्रार्थना का गान करते हुए उन सभी की नाचने की इच्छा उत्पन्न हो गई। नरेन बाबू और आनन्द बाबू ने प्रायः कलकत्ता में ब्रह्मवादियों के नगर कीर्तन में नृत्य किया था, इसलिए उन्हें योगी बाबाजी के साथ उस भाव में नाचते हुए कुछ बुरा नहीं लगा। केवल जब बाबाजी ने युगल रूपराशि (श्री श्री राधा और कृष्ण का सुन्दर स्वरूप) गाया, तो उन्होंने अरूपरूपराशि (निराकार का सुन्दर स्वरूप) गाया। जैसे ही वे गा रहे थे, एक मनोहर दृश्य

निर्मित हो गया। एक असली बाबाजी थे, एक शिखा विहीन सांसारिक वैष्णव था तथा अन्य दो जूते और चश्मे पहने व्यक्ति थे। जैसे ही वे आगे बढ़ रहे थे, बहुत से लोग उन्हें उत्सुकतापूर्वक देखकर सोच रहे थे, "क्या बाबाजी जगाइ और माधाइ का उद्धार कर रहे हैं?"

पण्डित दास बाबाजी के आश्रम में दोनों वैष्णव और दोनों बाबू

कीर्तन के आनन्द के समुद्र में तैरते हुए, वे पण्डित दास बाबाजी के आश्रम पहुँच गये। जब पण्डित दास बाबाजी और अन्य बाबाजी ने कीर्तन सुना, तो वे उनके दल की ओर गये तथा उन्हें प्रणाम कर उनके कीर्तन के आनन्द में सम्मिलित हो गये। लगभग रात बीतने के एक घण्टे बाद कीर्तन समाप्त हुआ।

मण्डप में सभी द्वारा आसन ग्रहण करने के बाद, मल्लिक महाशय ने बाबाजी के चरणों की धूल को लेकर अपने शरीर पर लगा लिया। इसके बाद उन्होंने अपने हाथों से अपने दो साथियों के शरीर पर वह धूलि लगा दी और कहा, "आपके सभी संशय दूर हो जाएँ।" उन्होंने उत्तर दिया, "कोई भी किसी के चरणों की धूल ले सकता है, परन्तु आज हमें अपने हृदयों में एक नयी अनुभूति हो रही है—जैसे प्रातः स्नान के बाद कोई शुद्धता का अनुभव करता है। किन्तु हमें भय है कि यदि हम ऐसा ही करते रहे, तो कहीं हम मूर्ति उपासक न बन जाएँ। सच कहें तो हमने ब्रह्मवादियों के संग में अनेक कीर्तन देखे और गाये हैं, परन्तु हमने ऐसे प्रेम का कभी अनुभव नहीं किया जैसा अभी भक्तों के संग में किया है। चलो देखते हैं कि निराकार हरि के भण्डार में हमारे लिए क्या है?"

उनकी वार्ता सुनकर प्रेमदास बाबाजी और हरिदास बाबाजी कुछ चकित हुए और पूछने लगे, "ये कहाँ से आये हैं?" जब योगी बाबाजी ने अपने अतिथियों के विषय में सब कुछ बता दिया, तो प्रेमदास बोले, "इसमें कोई संशय नहीं है कि गौरचन्द्र ने इन दो महान आत्माओं को आपके माध्यम से आकर्षित किया है।"

योगी बाबाजी पण्डित दास बाबाजी से पूछते हैं कि योगाभ्यास के बिना रस समाधि तथा राग साधना कैसे प्राप्त किये जा सकते हैं

सभी मण्डप में प्रसन्नतापूर्वक बैठे थे। एक कोने में एक दीप मन्द टिमटिमा रहा था। वहाँ उपस्थित साधुओं में अधिकतर अपनी जप थैलियों में रखी तुलसी माला पर हरिनाम का जप कर रहे थे। योगी बाबाजी ने पण्डित बाबाजी से कहा, "आपके उपदेश ने मेरे हृदय के बहुत सारे अंधकार का नाश कर दिया है। परन्तु मेरा एक सन्देह है—यदि हम योगपथ के प्राणायाम, ध्यान, तथा धारणा के अभ्यास की आवश्यकता न समझें, तो हम रस समाधि कैसे प्राप्त कर सकते हैं? हृदय में अपनी स्वरूप स्थिति को जागृत करने के लिए सभी को साधना करने की आवश्यकता होती है। राग या स्वाभाविक आसक्ति जागृत करने के लिए क्या साधना होती है?

प्रश्न सुनने के बाद, सभी ने पण्डित दास बाबाजी के गम्भीर और सौभाग्यशाली चेहरे की ओर आशापूर्वक देखने लगे। मल्लिक महाशय कुछ विस्मित हुए। शायद वे मान रहे थे कि योगी बाबाजी ही सर्वश्रेष्ठ वैष्णव हैं। योगी बाबाजी की जिज्ञासा सुनकर मल्लिक महाशय समझ गये कि योगी बाबाजी पण्डित बाबाजी का सम्मान गुरु के रूप में करते हैं। फिर उन्होंने अत्यन्त आदर भाव से पण्डित बाबाजी को देखा।

पण्डित बाबाजी का उत्तर : (क) भौतिक आसक्ति तथा आध्यात्मिक आसक्ति के मध्य अन्तर; वैष्णव साधन किये बिना वैराग्य की प्राप्ति अथवा योगाभ्यास द्वारा आध्यात्मिक आसक्ति प्राप्त करना असम्भव है

पण्डित बाबाजी ने बोलना प्रारम्भ किया, "बद्धजीव के लिए शुद्ध आध्यात्मिक आसक्ति के साथ आध्यात्मिक स्तर पर कार्य करना अत्यन्त कठिन है। शुद्ध आध्यात्मिक आसक्ति ही भौतिक आसक्ति के रूप में विकृत रूप से परिवर्तित हो गई है। जैसे ही भौतिक आसक्ति बढ़ती है, आध्यात्मिक आसक्ति उसी अनुपात में कम होती जाती है। जैसे-जैसे आध्यात्मिक आसक्ति बढ़ती जाती है, भौतिक आसक्ति उसी अनुपात में कम होती जाती है। यह जीवात्मा

का स्वाभाविक लक्षण है। ऐसा नहीं है कि भौतिक आसक्ति का दमन आध्यात्मिक आसक्ति जागृत करता है। बहुत से लोग केवल भौतिक आसक्ति का दमन करने के लिए वैराग्य का सहारा लेते हैं, परन्तु वे अपनी आध्यात्मिक आसक्ति बढ़ाने का प्रयास नहीं करते। इसका अन्त दुर्भाग्यपूर्ण होता है।

"ध्यान, प्रत्याहार तथा धारणा जैसे विचार तथा अभ्यास अपनी आध्यात्मिक आसक्ति को जागृत करने रूपी अन्तिम परिणाम को प्राप्त करने के लिए निर्देशित किये जाते हैं। और बहुत से लोग इनका अभ्यास करते हैं। परन्तु वे पर्याप्त रूप से यह विचार नहीं करते कि आध्यात्मिक आसक्ति किस प्रकार प्राप्त की जाए। यही कारण है कि सामान्यतया योगी सिद्धियों द्वारा आकर्षित हो जाते हैं और अन्ततः आध्यात्मिक आसक्ति प्राप्त करने में असफल हो जाते हैं। इसकी तुलना में, वैष्णव अभ्यास श्रेष्ठ है।

"देखो, किसी भी प्रकार की साधना एक विशेष क्रियाकलाप है। चाहे कोई मनुष्य जीवन में किये जाने वाले किन्हीं क्रियाकलापों में आसक्ति विकसित कर ले तथा कोई परम सत्य को प्राप्त करने का प्रयास करते हुए केवल विचार करे और कठोर परिश्रम करे, फिर भी इस प्रकार कार्य करनेवाले क्या शीघ्र ही आध्यात्मिक आसक्ति जागृत करने में सफल होते हैं? यदि आध्यात्मिक आसक्ति विकसित करने के प्रयासों को जीवन के भिन्न कार्यकलाप मान लिया जाए, तो वह एक ओर भौतिक आसक्तियों द्वारा खींच लिया जायेगा और दूसरी ओर आध्यात्मिक चेतना द्वारा। ऐसी स्थिति में, जो आसक्ति अधिक है, उसका जीवन उसी दिशा में जायेगा। एक नाव पतवार के बल पर गतिशील होती है, परन्तु जब जल का प्रवाह नाव को बहा ले जाता है, तब पतवार असफल हो जाती है। इसी प्रकार जैसे ही कोई साधक मन की नाव तथा ध्यान, प्रत्याहार तथा धारणा जैसे पतवारों की सहायता से समुद्र पार करने का प्रयास करता है, तब कभी-कभी आसक्ति का प्रवाह उसे तुरन्त इन्द्रियभोग में बहा ले जाता है।"

(ख) स्वतःस्फूर्त प्रेम में रागानुग भक्ति की योगाभ्यास तथा निराकार ज्ञान से श्रेष्ठता का विश्लेषण

"विष्णु की भक्ति स्वत:स्फूर्त प्रेम (रागानुग भक्ति) से की जाती है। रागानुग भक्ति द्वारा साधक निश्चित रूप से तुरन्त ही आध्यात्मिक आसक्ति प्राप्त कर लेता है। मनुष्य को यह जानना चाहिए कि आसक्ति का बहाव किस तरफ जा रहा है। बद्धजीव का हृदय स्वाभाविक रूप से जो पसन्द करता है और अपने जीवन निर्वाह के लिए वह जो प्रिय वस्तुएँ स्वीकार करता है, वे सभी मनुष्य जीवन में भौतिक आसक्तियाँ हैं। विचार के बाद, यह देखा गया है कि इन आसक्तियों के पाँच प्रकार हैं जो पाँच इन्द्रियों से सम्बन्धित हैं। इन्द्रियविषयों के प्रति आकर्षित होकर मन उनकी ओर भागता है। कोई भी व्यक्ति जिह्वा द्वारा खाता है, नाक से सूँघता है, कानों से सुनता है, त्वचा द्वारा अनुभव करता है और आँखों द्वारा देखता है। बद्धजीव का मन सदैव किसी इन्द्रियविषय के प्रति आसक्त रहता है। मन को इन्द्रिय विषयों से कौन सी शक्ति विरक्त कर सकती है? यद्यपि शुष्क निराकार चिन्तन इस विषय में कुछ सीमा तक सहायक हो सकता है, तथापि निराकार ब्रह्म के निष्क्रिय स्वभाव के कारण, उपासक सम्पूर्ण बल प्राप्त करने में असमर्थ हो जाता है। इसी कारण योगी तथा ज्ञानी अनेक समस्याओं का सामना करते हैं। भक्ति में किसी तरह की कठिनाइयाँ नहीं हैं। कृष्ण के भक्तों के जीवन ब्रह्म से भिन्न नहीं होते। इस मार्ग में भौतिक आसक्ति और आध्यात्मिक आसक्ति दोनों अभिन्न हैं। जब मन आँखों द्वारा इन्द्रिय विषय देखना चाहता है, तो अच्छा है—इसे श्रीविग्रह की अवर्णनीय सुन्दरता का दर्शन करने दो। इस स्थिति में भौतिक आनन्दोपभोग और आध्यात्मिक भोग दोनों समान हैं। आप श्रवण करना चाहते हैं? तो वे गीत व कथाएँ सुनिये जो कृष्ण का गुणगान करती हैं। क्या आप स्वादिष्ट व्यंजन खाना चाहते हैं? तो सभी प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन कृष्ण को अर्पित कर दो और प्रसाद ग्रहण करो। सूँघने के लिए भगवान् को अर्पित किये हुए चन्दन लेप तथा तुलसी हैं। इस प्रकार, कृष्णभावना के साधक के लिए सभी विषय वस्तुएँ दिव्य बन जाती हैं। जो कृष्ण भक्ति का अनुगमन करता है, वह सदैव आध्यात्मिक धरातल पर रहता है। उसकी सभी क्रियाएँ उसकी आध्यात्मिक आसक्ति का वर्धन करती हैं। उसके लिए इन्द्रियों के कार्यकलाप बाधाएँ नहीं होते, अपितु वे भगवत्प्रेम प्राप्त करने का साधन बन जाते हैं। मैंने आध्यात्मिक

आसक्ति तथा अन्य आध्यात्मिक मार्गों का संक्षिप्त वर्णन किया है। आप एक महान् वैष्णव हैं। अब मैं बोलना समाप्त करता हूँ। यदि मुझसे कोई भूल हुई हो तो कृपया मुझे क्षमा कर दें।"

पण्डित दास बाबाजी की व्याख्या द्वारा सभी मोहित हो जाते हैं और नरेन तथा आनन्द बाबू का राजा राम मोहन राय के विषय में सन्देह उत्पन्न हो जाता है

पण्डित दास बाबाजी का प्रवचन सुनकर सभी विस्मित हो गये। भिन्न-भिन्न लोगों में भिन्न-भिन्न भावनाएँ जागृत हो गईं। यद्यपि योगी बाबाजी योग के मार्ग में दक्ष थे, फिर भी वे वैष्णव रसों में भी पूर्णत: योग्य थे। अब वे संशय से मुक्त हो गये और उन्होंने पण्डित दास बाबाजी के चरणों के धूलिकणों का आस्वादन किया। पण्डित दास बाबाजी ने प्रेम और स्नेहपूर्वक उन्हें गले लगा लिया। मल्लिक महाशय की भावनाओं को कोई भी समझ नहीं सका।

नरेन बाबू तथा आनन्द बाबू ने श्रीविग्रह अर्चन के विषय पर कुछ दिनों तक विचार किया। योगी बाबाजी ने उन्हें अध्ययन करने के लिए चैतन्य गीता दे दी। उसके अध्ययन तथा अनेक दृष्टिकोणों पर विचार करने के बाद, वे विग्रह आराधना के उद्देश्य को थोड़ा बहुत समझ गये, परन्तु अभी भी उनमें श्रद्धा उत्पन्न नहीं हुई। उन्होंने पण्डित दास बाबाजी के भक्ति से परिपूर्ण गम्भीर उपदेशों को सुना, और आपस में चर्चा की, "हाय! हम विदेशी ज्ञान द्वारा मोहित हैं। हम नहीं जानते कि हमारे देश के पास क्या अनमोल खजाने हैं!"

नरेन बाबू ने कहा, "आनन्द बाबू! किस शिक्षा ने राजा राम मोहन राय को श्रीविग्रह आराधना के विज्ञान की अवहेलना करने का अवसर प्रदान किया? शायद इस विषय में उनसे कुछ भूल हो गई। क्या राजा राम मोहन राय ने भूल की? ऐसा कहने में मैं भय करता हूँ। इन राम मोहन राय जी ने हमें ऐसा विश्वास करवा दिया कि हमारे व्यास और नारद गलती पर थे, तो आज हम कैसे कह दें कि वे गलती पर थे?"

अपने तीन साथियों को कुंज की ओर वापिस ले जाते हुए योगी बाबाजी युक्तिपूर्वक गाते हैं

देर रात हो गई थी। योगी बाबाजी अपने तीन साथियों के साथ चलने लगे। कुंज की ओर वापिस जाते हुए रास्ते में उन्होंने यह गीत गाया :

केन आर कर द्वेष, विदेशीजन भजने।
भजनेर लिंग नाना, नाना देश नाना जने॥

केह मुक्त कच्छे भजे, केह हान्नु गाड़ी पूजे।
केह वा नयन मुदि, थाके ब्रह्माराधने॥

केह योगासने पूजे, केह संकीर्तने भजे।
सकले भाजिचे सेई, एक मात्र कृष्ण धने॥

अतएव भ्रातृभावे, थाक सबे सुसद्भावे।
हरि भक्ति साध सदा, ए जीवने वा मरणे॥

"क्यों तुम उनसे द्वेष करते हो, जो किसी अन्य पद्धति से उपासना करते हैं? विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न लोग होते हैं। कोई कौपीन पहनकर उपासना करता है, कोई सिर झुकाकर उपासना करता है। कोई आँखें बन्द करके ब्रह्म की उपासना करता है। कोई योगिक आसनों में बैठकर उपासना करता है। जबकि कुछ संकीर्तन में तल्लीन रहते हैं। परन्तु सभी परम धन कृष्ण की ही उपासना करते हैं। इसलिए, सभी को पूर्ण सहयोग करते हुए भ्रातृभाव से रहना चाहिए। इस जीवन में या मृत्यु के समय सदैव हरि की भक्ति में तल्लीन रहो।"

गाते हुए आनन्द बाबू और नरेन बाबू 'कृष्ण धने' गाने में संकोच करते हुए उसके स्थान पर 'भगवाने' गाया। इस कार्य ने योगी बाबाजी का ध्यान तुरन्त खींच लिया, परन्तु उस रात उन्होंने उन दोनों को कुछ नहीं कहा।

भक्तिभाव से उन सब ने कुछ प्रसाद ग्रहण किया और फिर विश्राम किया।

❖❖❖

पंचम किरण

आधुनिक पाश्चात्य विचारानुसार, वैष्णव विषयासक्त लोग होते हैं तथा भक्ति केवल उच्छृंखलता या व्यभिचार है

नरेन बाबू और आनन्द बाबू एक साथ ही लेटे हुए थे, परन्तु अनेक प्रकार के विचारों के कारण वे बहुत समय से सो नहीं पा रहे थे। नरेन बाबू ने कहा, "आनन्द बाबू! आप क्या सोच रहे हैं? लम्बे समय तक हम वैष्णव धर्म को सर्वाधिक निन्दनीय मानते रहे। कुछ विषयी लोगों ने विषयासक्त शिरोमणि कृष्ण को भगवान् के रूप में प्रचारित कर दिया। उस दिन रेवरेन्ड चार्ट ने इस विषय पर एक विस्तृत प्रवचन दिया था। हमारे प्रमुख आचार्य ने हमें कई बार विशेष रूप से कृष्ण के विषय में चेतावनी दी है। एक दिन उन्होंने कहा कि वैष्णव भक्ति के बारे में बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, परन्तु वास्तव में वे पुरुषों और स्त्रियों के कामुक सम्बन्धों को भक्ति मानते हैं। वह चार्ट यह नहीं देखता कि भक्ति एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। परन्तु वैष्णवों का भक्तिभाव देखकर और उनके ज्ञान से परिपूर्ण उपदेशों को सुनकर, अब मेरा उनके प्रति कोई अनादर भाव नहीं रह गया है। आप क्या कहते हैं?"

आनन्द बाबू ने कहा, "मैं नहीं जानता, कुछ कारणों से अब मेरी उनमें विशेष श्रद्धा उत्पन्न हो गई है। पण्डित बाबाजी कितने महान साधु हैं! केवल उन्हें देखने मात्र से किसी की भी भगवान् के प्रति भक्ति जागृत हो जाती है। उनके उपदेश अमृत तुल्य हैं। उनकी विनम्रता उदाहरण रूप है। उनका ज्ञान असीमित है। जरा देखो, योगी बाबाजी इतने विद्वान तथा योगशास्त्र में निपुण हैं, परन्तु फिर भी वे पण्डित बाबाजी से कितना अधिक सीखते हैं।"

नरेन बाबू का सन्देह कि विग्रह अर्चन मात्र मूर्तिपूजा है तथा इस विषय पर उनकी मनोकल्पना

नरेन बाबू ने कहा, "पण्डित बाबाजी के प्रवचनों से मैंने एक अति उत्तम

बात समझी है। वैष्णवों द्वारा अर्चन किया जानेवाला विग्रह भगवान् से भिन्न कोई प्रतिमा नहीं है, अपितु यह केवल एक प्रतिनिधि है जो भगवान् के प्रति भक्ति जागृत करता है। परन्तु मेरा सन्देह यह है—क्या इस प्रकार प्रतिमा रूप में दिव्यता की उपस्थिति मानी जा सकती है? भगवान् सर्वव्यापक और सर्वज्ञ व्यक्ति हैं। यदि हम उन्हें एक सीमित रूप में रख दें, तो क्या एक विशिष्ट समय और स्थान तक सीमित करने के कारण उनकी कीर्ति कम नहीं हो जायेगी? इसके अतिरिक्त एक वस्तु की दूसरी वस्तु में कल्पना करना क्या बुद्धिमानी है?"

श्रीविग्रह आराधना के विषय में आनन्द बाबू की अधिक परिशुद्ध विचारधारा

आनन्द बाबू कुछ और अधिक समझे। उन्होंने कहा, "नरेन बाबू, अब मेरे और अधिक ऐसे संशय नहीं रहे। परम भगवान् ऐसे व्यक्ति हैं, जो अद्वितीय हैं। कोई भी उनके समान या उनसे श्रेष्ठ नहीं है। सब कुछ उनके द्वारा नियंत्रित है। ऐसा कुछ भी नहीं है जो उनमें द्वेष भाव जागृत कर सके। अपने हृदय में दृढ़ संकल्प के साथ उनके प्रति भक्ति प्राप्त करने के लिए कोई भी कुछ भी कार्य करता है, तो वे उसका फल प्रदान करते हैं। विशेष रूप से, सभी निराकार सत्यों का कुछ प्रतिनिधि रूप होता है। यद्यपि प्रतिमा उस स्वरूप से भिन्न है जिसे वह व्यक्त करती है, तथापि वह उस वस्तु के भाव को अभिव्यक्त करती है। जब घड़ियाँ स्वरूपविहीन समय को अभिव्यक्त करती हैं, लेख सूक्ष्म ज्ञान को अभिव्यक्त करते हैं, तथा चित्र करुणा जैसे स्वरूपविहीन गुणों को अभिव्यक्त करते हैं, तो प्रेममयी सेवा का प्रतिपादन करने में विग्रह के रूप द्वारा लाभ प्राप्त होने के विषय में कोई संशय नहीं है। मुझे नहीं लगता कि श्री विग्रहाराधन की मूर्तिपूजा के रूप में अवहेलना कर देनी चाहिए। अपितु, श्री विग्रह का परम भगवान् के प्रतिनिधि के रूप में विशेष आदर करना चाहिए। यदि घड़ी और पुस्तकों को सावधानीपूर्वक संभालकर रखा जाता है, तो श्रीविग्रह की आराधना में क्या खराबी है, जो भक्तिभाव जागृत करता है?

भगवान् जानते हैं कि ऐसे कार्यकलाप केवल उन्हीं के निमित्त हैं। इसके परिणामस्वरूप वह निश्चित रूप से प्रसन्न हो जायेंगे।"

बाबाजी उन्हें विग्रहाराधन की चर्चा बाद में करने का आश्वासन देकर सो जाने का अनुरोध करते हैं

नरेन बाबू और आनन्द बाबू ने सोचा कि योगी बाबाजी और मल्लिक महाशय सो चुके हैं। इस कारण वे खुलकर उन सभी विषयों की चर्चा कर रहे थे। योगी बाबाजी सदैव निद्रा से परे थे, इसलिए उनकी सभी बातें सुनकर उन्होंने इशारा करते हुए कहा, "देर रात हो चुकी है। सो जाइये। कल मैं इन विषयों की चर्चा करूंगा।"

नरेन बाबू और आनन्द बाबू अब काफी श्रद्धायुक्त हो गये थे। बाबाजी की कृपा की याचना करते हुए वे आदरपूर्वक बोले, "बाबाजी! हम भी मल्लिक महाशय की तरह आपके चरणों की शरण लेते हैं। हम आपकी कृपा की प्रार्थना करते हैं।"

बाबाजी ने कहा, "मैं कल समझाने का प्रयास करूँगा।"

अल्प समय में सभी सो गये। उन्हें सोया हुआ देखकर बाबाजी योगाभ्यासों में लग गये, जो कोई देख नहीं पाया।

योगी बाबाजी राजयोग की आठ प्रक्रियाओं का वर्णन करते हैं

प्रातः शीघ्र उठकर, उन्होंने अपने प्रातःकर्म किये और पंचवटी के नीचे बैठ गये।

मल्लिक महाशय ने राजयोग के विषय में जिज्ञासा की। और बाबाजी ने वर्णन करना प्रारम्भ किया, "राजयोग की प्रमुख प्रक्रिया है समाधि। समाधि प्राप्त करने के लिए पहले यम, फिर नियम, उसके बाद आसन, और फिर प्राणायाम और प्रत्याहार, तत्पश्चात् ध्यान और धारणा का अभ्यास करना पड़ता है। साधक को इन प्रक्रियाओं का अभ्यास अवश्य ही करना पड़ता है। यदि

साधक सदाचारी, धार्मिक और शुद्ध है, तो वह आसन के अभ्यास से शुरुआत कर सकता है। परन्तु यदि उसका चरित्र दोषपूर्ण है या कुछ अशुद्ध म्लेच्छ आदतें हैं, तो उसे पहले अवश्य ही यम तथा नियम का पालन करना चाहिए। पतंजलि का दर्शन ही योग पद्धति का शास्त्र है। मैं पतंजलि की पद्धतियों पर आधारित राजयोग का वर्णन करूँगा।

"वे कहते हैं :

यमनियमप्राणायामप्रत्याहार धारणाध्यान समाधयोऽष्टावङ्गानि (*पद्यावली* २.२९)

(१) यम, (२) नियम, (३) आसन, (४) प्राणायाम, (५) प्रत्याहार, (६) धारणा, (७) ध्यान और (८) समाधि—ये राजयोग की आठ क्रियाएँ हैं।

(१) यम—ये पाँच प्रकार के हैं, जैसे अहिंसा और सत्यवादिता

अहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः (*पद्यावली* २.३०)

(क) अहिंसा, (ख) सत्य, (ग) अस्तेय, चोरी न करना, (घ) ब्रह्मचर्य, और (ड) अपरिग्रह, आधिपत्य की भावना से मुक्ति—ये पाँच यम हैं। जो लोग हिंसा में प्रवृत्त हैं, उन्हें सावधानीपूर्वक उसका त्याग कर देना चाहिए।

(क) अन्य जीवों को मारने की इच्छा को हिंसा कहते हैं। यवनों तथा तमोगुण अथवा रजोगुण से प्रभावित आर्यों को योग के उपदेश लेने से पूर्व अहिंसा का अभ्यास करना चाहिए।

(ख) जो लोग झूठ बोलते हैं, उन्हें सत्य बोलने का अभ्यास करना चाहिए।

(ग) जो दूसरों की संपत्ति चुराते हैं, उन्हें अस्तेय का आचरण करना चाहिए।

(घ) जो संभोग के लोभी हैं, उन्हें इस आदत का त्याग करना होगा।

(ज) जो अन्यों की संपत्ति प्राप्त करने की इच्छा करते हैं, उन्हें उस इच्छा का दमन करना होगा।

(२) नियम—ये पाँच प्रकार के हैं, जैसे शुचि और सन्तोष

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः (*पद्यावली* २.३२)

'शौच, स्वच्छता; सन्तोष, सन्तुष्टि; तप, तपस्या; स्वाध्याय, वैदिक शास्त्रों का अध्ययन; और ईश्वर प्रणिधान, परम भगवान् का ध्यान करना—ये पाँच नियम कहलाते हैं। शरीर को स्वच्छ रखना चाहिए। मन को सन्तुष्ट रखना सीखो। सब प्रकार की कठिनाइयों को सहन करना सीखो। यदि किसी ने अनेक पाप किये हैं, तो उसे उनके लिए पश्चात्ताप करना सीखना चाहिए। वैदिक शास्त्रों का अध्ययन करके ज्ञान अर्जित करना चाहिए। अपने मन को भगवान् के स्मरण में निमग्न करना सीखना चाहिए।

(३) आसन—बत्तीस प्रकार के आसनों में से दो, पद्मासन और स्वस्तिकासन

(*तत्र*) *स्थिरसुखमासनम्* (*पद्यावली* २.४६)

हठयोग की व्याख्या में जो सभी आसन मैंने पहले बताये, वे भी राजयोग में सम्मिलित हैं। राजयोग में पद्मासन और स्वस्तिकासन प्रसिद्ध हैं। उदाहरणस्वरूप, पद्मासन का वर्णन इस प्रकार किया गया है :

उर्वोरुपरिविन्यस्य सम्यक् पादतले उभे।
अँगुष्ठौच निवध्नियात् हस्ताभ्यां व्युत्क्रमात् तथा॥

'दोनों चरणों के, तलवे जांघ पर रखना और अंगूठे को हाथों से पकड़ना (पद्मासन कहलाता है)।'

तथा स्वस्तिकासन का वर्णन इन शब्दों में किया गया है :

जानूर्वोरन्तरे योगी कृत्वा पादतले उभे।
ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तत् प्रचक्ष्यते॥

'तलवों को घुटने और जाँघ के बीच रखने और सीधे बैठने को स्वस्तिकासन कहते हैं।'

(४) प्राणायाम्—रेचक, पूरक और कुम्भक द्वारा सिद्धि

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर् गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥ (पद्यावली २.४९)

'आसनों में सफलता प्राप्त करने के बाद अन्दर आनेवाली और बाहर जानेवाली श्वास को रोकने तथा चलाने की प्रक्रिया, प्राणायाम, का अभ्यास करना चाहिए।' जब श्वास नासिका द्वारा बाहर निकाल ली जाती है, उसे रेचक या श्वास कहते हैं। जब श्वास नासिका द्वारा अन्दर खींची जाती है, उसे पूरक या प्रश्वास कहते हैं। जब वायु को रोका जाता है तो उसे कुम्भक कहते हैं। रेचक, पूरक और कुम्भक द्वारा साधक प्राणायाम में सिद्ध हो जाता है।

जिन लोगों ने यम और नियम में सफलता प्राप्त कर ली है तथा आसनों में दक्षता प्राप्त कर ली है, उन्हें प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

प्राणायाम के अभ्यास में तीन नियम—(क) स्थान सम्बन्धी (ख) काल सम्बन्धी तथा (ग) संख्या सम्बन्धी।

(स तु) बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर् देशकालसङ्ख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः
(पद्यावली २.५०)

प्राणायाम के अभ्यास में वायु को रोकते हुए स्थान, समय तथा संख्या से सम्बन्धित कुछ नियम हैं।

(क) स्थान सम्बन्धी नियम इस प्रकार हैं : साधक को एक पवित्र, समतल, शान्त स्थान में जाना चाहिए, जहाँ शरीर, मन, तथा बुद्धि स्थिर रह सकें। मृगछाल तथा मुलायम कपड़े से ढकी कुशा घास के आसन पर बैठकर साधक को प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। उस स्थान के पास स्वच्छ जल का जलाशय होना चाहिए। कमरा स्वच्छ होना चाहिए तथा वायु स्वास्थ्यप्रद होनी चाहिए। साधक को संतोष देने वाले हल्के खाद्य पदार्थ आसपास ही सरलता से उपलब्ध होने चाहिए। वहाँ सर्पों, पशुओं और मच्छरों की बाधा नहीं होनी चाहिए। वह स्थान साधक के स्वदेश से अधिक दूर नहीं होना चाहिए। परन्तु यह अपना घर भी नहीं होना चाहिए।

(ख) समय से सम्बन्धित नियम इस प्रकार हैं : प्राणायाम का अभ्यास

करने का सर्वश्रेष्ठ समय शीत ऋतु का प्रारम्भ या अन्त है। प्राणायाम का अभ्यास भलीभाँति प्रातः, दोपहर, दिन के बाद और देर रात में किया जा सकता है। खाली पेट या खाने के तुरन्त बाद प्राणायाम नहीं करना चाहिए। साधक को हल्का भोजन करना आवश्यक है। नशीले पदार्थ, मांस तथा मछली खाने का निषेध है। खट्टे, शुष्क, नमकीन तथा मसालेदार खाद्य भी वर्जित हैं। थोडे मधुर तथा स्नेहयुक्त खाद्य, मुख्यतः खीर समय-समय पर लेने चाहिए। अनियमित क्रियाएं जैसे बहुत सुबह-सुबह स्नान करना तथा देर रात खाना वर्जित हैं।

(ग) संख्या सम्बन्धी नियम इस प्रकार हैं : इड़ा या चन्द्रनाड़ी द्वारा श्वास ग्रहण करते हुए, बैठकर मानसिक रूप से सोलह बार बीजमन्त्र का जप करना चाहिए। चौंसठ बार तक जप करने तक उसी श्वास को रोके रखना चाहिए। फिर बत्तीस तक जप करते हुए उसी श्वास को बाहर निकालना चाहिए। उसके बाद १६ बार जप करते हुए सूर्य या पिंगला नासिका द्वारा श्वास लेना चाहिए, ६४ बार जप करते हुए श्वास को रोके रखना चाहिए और ३२ बार जप करते हुए श्वास को इड़ा द्वारा छोड़ना चाहिए। पुनः पहले की तरह जप करते हुए इड़ा द्वारा श्वास लेना चाहिए और रोकने के बाद श्वास को पिंगला द्वारा छोड़ना चाहिए। ऐसा तीन बार करने से एक मात्रा या प्राणायाम की एक इकाई पूर्ण हो जाती है। बायें नासिका छिद्र को इड़ा या चन्द्र कहते हैं, तथा दांये नासिका छिद्र को पिंगला या सूर्य कहते हैं। श्वास रोकने के कोष्ठ को सुषुम्ना कहते हैं। अन्यों की मान्यतानुसार रेचक पहले करना चाहिए। दोनों ही स्थितियों में परिणाम समान होता है।

प्राणायाम के कुम्भक का अभ्यास 'मात्रा' द्वारा नाड़ियों के शोधन द्वारा किया जाता है

एक से बारह मात्राओं तक प्राणायाम का अभ्यास करने से अधम मात्रा सम्पूर्ण हो जाती है। यदि कोई १६ मात्राएँ कर पाये तो यह मध्यम मात्रा होती है। २० मात्राएँ करने से उत्तम मात्रा पूर्ण हो जाती है। सभी मात्राएँ पाँच समय करनी चाहिए—प्रातः, दोपहर, दिन के बाद, संध्या के बाद, तथा आधी रात को।

तीन मास तक इस प्रकार अभ्यास करने के बाद नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं। नाड़ियों के शुद्ध हो जाने के बाद, प्राणायाम का चतुर्थ भाग, केवल-कुम्भक पूर्ण हो जाता है। पतंजलि ने कहा है :

बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थ : (*पद्यावली* २.५१)

'केवल नामक प्राणायाम को चतुर्थ कुम्भक में रेचक तथा पूरक के बिना किया जाता है।'

यदि कुम्भक को विधिवत् किया जाए, तो दो महान् फल प्राप्त होते हैं। प्रथम, मन की बाह्य अनुभूति के आवरण कम हो जाते हैं। दूसरा, धारणा के लिए मन योग्य होता जाता है।

(५) प्रत्याहार

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेंद्रियाणां
प्रत्याहार: (*पद्यावली* ५.५४)

'जब इन्द्रियाँ अपने-अपने विषय में पूर्ण रूप से प्रवृत्त नहीं होतीं, परन्तु अन्तर्नियन्त्रित की जाती हैं और केवल बाहरी रूप से इन्द्रियविषयों को स्पर्श करती हैं, तो उसे प्रत्याहार कहते हैं।' जब साधक देखने की क्रिया को अन्दर देखने में लगाने का क्रमश: आभ्यास करता है, तो उसे नेत्रों का प्रत्याहार कहते हैं। इसी प्रकार जब सभी इन्द्रियों का संयम कर लिया जाता है, तो धीरे-धीरे मन नियंत्रित हो जाता है तथा इन्द्रियतृप्ति की लालसा कम हो जाती है। ऐसा कैसे होता है, यह एक साधक ही अनुभव कर सकता है। इस प्रक्रिया का अभ्यास करके मुझे विशेष लाभ हुआ है।

(६) धारणा

देश बन्धश्चित्तस्य धारणा (*पद्यावली* ३.१)

'जब मन को नाभि या नासिका आदि किसी स्थान पर स्थिर किया जाता है, तो उसे धारणा कहा जाता है।' धारणा का उच्चतम परिणाम ध्यान की सहायता से तथा समाधि की जागृति द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु धारणा के अभ्यास के दौरान ही अनेक शक्तियाँ अर्जित हो जाती हैं। मैं उनका वर्णन यहाँ करना अनिवार्य नहीं समझता। ऐसा जान लेना चाहिए कि जो परम

सत्य को प्राप्त करना चाहते हैं, वे शक्तियों की कामना नहीं करते। यद्यपि धारणा का अभ्यास करते हुए अनेक शक्तियाँ उपस्थित हो जाती हैं, परन्तु वैष्णव उन्हें ग्रहण नहीं करते। योग दार्शनिक जिसे धारणा कहते हैं, उसे हठयोग में मुद्राएँ कहा जाता है।

(७) ध्यान

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् (*पद्यावली* ३.२)

'जिस स्थान में धारणा की गई हो, वहाँ ज्ञान के समन्वय को ध्यान कहते हैं।' उदाहरणस्वरूप, जब धारणा कृष्ण के चरणकमलों पर एकाग्र हो जाए, तो समन्वित ज्ञान के दृढ़विश्वास की स्थिति को चरण ध्यान अथवा भगवान् के चरण कमलों का ध्यान कहते हैं। यदि धारण स्थिर नहीं है, तो निर्बाधित ध्यान सम्भव नहीं है।

(८) समाधि—समाधि की अवस्था में राजयोग का अभ्यास करते हुए भी प्रेम का आस्वादन किया जा सकता है

तद् एवार्थ मात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधि: (*पद्यावली* ३.३)

'जब धारणा द्वारा अर्जित स्वरूप ध्यान में भी प्रकट रहे, परन्तु वह व्यक्तित्व विहीन प्रतीत होता है, उस स्थिति को समाधि कहते हैं।' जो निराकारवादी समाधि की स्थिति प्राप्त कर लेते हैं, वे विशेष या विविधता नामक लक्षण पर और अधिक ध्यान नहीं देते। इस प्रकार की समाधि हठयोग की चरम स्थिति में प्राप्त की जाती है। राजयोग में समाधि की उस अवस्था में, भौतिक प्रकृति से परे स्थित सत्य का अनुभव हो जाता है। उस अवस्था में मनुष्य विशुद्ध प्रेम का आस्वादन कर सकता है। इस विषय का शब्दों द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता। जब आप समाधि प्राप्त करते हैं, तो आप उस अवस्था को समझ सकते हैं। मैंने जो उपदेश दिया है, उससे अधिक को शब्दों में वर्णित नहीं किया जा सकता।"

मल्लिक महाशय की राजयोग सीखने की उत्सुकता

इतना कहकर योगी बाबाजी चुप हो गये। उनकी व्याख्या के दौरान, मल्लिक महाशय ने प्रत्येक विषय का संक्षिप्त विवरण लिख लिया। जब बाबाजी ने समाधि के विषय में उपदेश प्रारम्भ किया, तब वे बाबाजी के चरणों में गिर पड़े और बोले, "हे प्रभु! इस दास पर कृपा करें और मुझे योगाभ्यास सिखाएँ। मैं आपके पवित्र चरणों में अपना जीवन अर्पित करता हूँ।"

बाबाजी ने मल्लिक महाशय को उठाकर गले से लगा लिया और कहा, "योगाभ्यास एकान्त में किया जाता है। आप आज रात से ही प्रारम्भ कर सकते हैं।"

बाबाजी की विद्वत्ता और गम्भीरता से प्रसन्न होकर, नरेन बाबू तथा आनन्द बाबू ने अपने सिर झुका लिए और बाबाजी को सादर प्रणाम किया।

आनन्द तथा नरेन बाबू बाबाजी से उपदेश प्राप्ति का अनुरोध करते हैं

आनन्द बाबू ने कहा, "बाबाजी महाशय, हम शेर की भाँति आये थे, परन्तु अब हम कुत्तों जैसे बन गये हैं। जब हम आये थे, तो हम सोच रहे थे कि हिन्दुओं ने मूर्ति पूजा और निरर्थक व्रतों के लिए अपना सामाजिक जीवन त्याग दिया है। हम अपने ब्रह्मवादी दर्शन के प्रचार द्वारा उन्हें पुनर्जीवित करना चाहते थे। हम सोचते थे कि वैष्णव परम सत्य के ज्ञान से विहीन हैं और दूसरों की सलाह पर व्यर्थ ही संसार से विरक्त हो जाते हैं। वे केवल स्त्री प्राप्ति की इच्छा से ही संन्यास आश्रम ग्रहण करते हैं। ब्रह्मवाद की प्रकाशमान शिक्षाओं का हमारा प्रचार वैष्णवों के हृदयों से अज्ञान का अंधकार नष्ट कर देगा। हम आपके पवित्र चरणों में केवल कुछ दिनों के लिए आये हैं, परन्तु आपका व्यवहार, विद्वत्ता तथा दिव्य प्रेम देखकर हमारी भ्रांत धारणाएँ नष्ट हो गई हैं। हम और अधिक क्या कह सकते हैं, हमने आपके पवित्र चरणों में रहने का निश्चय कर लिया है।"

यह स्वीकारते हुए कि वैष्णव निर्दोष हैं, परन्तु उन्हें मूर्तिपूजक क्यों कहा जाता है, ऐसा संशय करते हुए दोनों बाबू बाबाजी से जिज्ञासा करते हैं

नरेन बाबू ने बाबाजी के चरणों में प्रणाम किया और विनम्रतापूर्वक बोले, "यदि आप हम पर करुणा करें, तो कृपया हमारे कुछ संशयों को दूर करके हमें मानसिक पीड़ा से मुक्त करवा दें। मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि वैष्णव धर्म पूर्णत: दोषरहित है। हमारे तर्कपूर्ण हृदयों को जो भी दोषपूर्ण प्रतीत हो रहा था और जो भी गलत धारणाएँ उत्पन्न हुईं, वे सब वास्तव में दोष नहीं थे, अपितु कुछ विशेष प्रकार के रिवाज हैं। इन रीतियों द्वारा सामान्य लोगों को अपरिचित विषयों से अवगत करवाया जाता है। मैं नहीं समझता कि आप जैसा कोई महान् विद्वान किसी भ्रमपूर्ण उपासना का अभ्यास करेगा।"

बाबाजी वैष्णव धर्म के विज्ञान का वर्णन करते हैं

चेहरे पर मुस्कान के साथ बाबाजी ने कहा, "बाबूजी, आप सत्य के निकट आ गये हैं। वैष्णव विज्ञान वास्तव में अपरोक्षवाद या प्रत्यक्ष अनुभूति है। अचानक जो भी सुना या देखा जाए, यह अनिवार्य नहीं कि वह सत्य हो। वैष्णव धर्म का विज्ञान पूर्ण रूप से दिव्य है। यही कारण है कि वैष्णव दर्शन पर सभी इतिहास, वर्णन और व्याख्यान आध्यात्मिक जगत् से सम्बन्धित हैं। हम सामान्यत: उस जगत् को वैकुण्ठ कहते हैं। उस जगत् की विलक्षणता को शब्दों में वर्णित नहीं की जा सकती। न ही वह मन से समझी जा सकती है। इसका कारण यह है कि शब्द तथा मन सदैव भौतिक प्रयासों द्वारा बँधे रहते हैं। वैष्णव धर्म में वैकुण्ठ के स्वरूप का वर्णन और चित्रण भौतिक संसार में प्रकट इसी विषय से सम्बन्धित तथ्यों के सहयोग से किया जाता है।

परम समाधि द्वारा वैष्णव दर्शन की परीक्षा तथा सूक्ष्म अन्वेक्षण किया जाता है। इसी कारण वैष्णव दर्शन में अन्य तर्कवादी दर्शनों से उत्पन्न धर्मों की अपेक्षा अत्यधिक दोषरहित रहस्यपूर्ण तथ्य प्राप्त किये जा सकते हैं। तर्कवितर्क पर आधारित सभी धर्म तुच्छ तथा अपूर्ण हैं। परन्तु जब समाधि के माध्यम से

धर्म का लक्ष्य ज्ञात हो जाए, तो आपको यह समझ जाना चाहिए कि वही जीवात्मा का नित्य धर्म है। वास्तविक रूप से, प्रेम ही वैष्णव धर्म का प्राण है। मनोधर्म के मार्ग पर आधारित धर्म द्वारा कभी भी प्रेम प्राप्त नहीं किया जा सकता। सर्वाधिक सौभाग्यवश आप वैष्णव प्रेम से आकर्षित हुए हैं। आज प्रसाद सेवन करने के बाद, मैं अपने सामर्थ्यानुसार, आपके सन्देह सुनूँगा और उन्हें दूर करने का प्रयास करूँगा।"

बाबाजी तथा दोनों बाबू श्रीविग्रह के समक्ष कीर्तन तथा नृत्य करते हैं

उसी समय मन्दिर कक्ष में शंख बज उठा। बाबाजी ने कहा, "पूजा समाप्त हो चुकी है। आइये, श्रीविग्रह के दर्शन करें।"

सभी खड़े हो गये और हाथ जोड़कर श्रीविग्रह के दर्शन करने लगे। बाबाजी की आँखों से भावपूर्ण अश्रुधारा बहने लगी। बाबाजी नृत्य करने लगे और यह गीत गाने लगे :

जय राधे कृष्ण, जय राधे कृष्ण, जय वृन्दावनचन्द्र

बाबाजी का भावपूर्ण नृत्य देखकर मल्लिक महाशय भी नाचने लगे।

नरेन बाबू तथा आनन्द बाबू ने कहा, "चलो, हम भी नाचें। यहाँ पर हम पर हँसने वाला कोई नहीं है। यदि आज हमारे संशय नष्ट हो गये, तो हम राधा-कृष्ण गाने में संकोच का अनुभव नहीं करेंगे।" ऐसा कहकर दोनों ने ताली बजाकर बाबाजी के साथ नृत्य करना प्रारम्भ कर दिया। फिर पुजारी चरणामृत ले आया और सबने उसे ग्रहण किया।

कुछ समय के बाद दोपहर की भोग आरती समाप्त हो गई। तब बाबाजी और तीनों बाबुओं ने अत्यन्त आदरपूर्वक प्रसाद ग्रहण किया।

❖❖❖

षष्ठ किरण

नरेन बाबू को ब्रह्मवादी प्रचारक के पत्र की प्राप्ति तथा उसका परिणाम

कुछ दिनों से जरा भी वर्षा नहीं हुई थी, अत: इस कारण सूर्य की किरणें अत्यन्त ऊष्ण थीं। प्रसाद ग्रहण करने के बाद योगी बाबाजी उन्हें पंचवटी के नीचे बैठने के लिए ले गये। वहाँ मन्द समीर बह रही थी। जैसे ही वे विभिन्न विषयों पर चर्चा करने लगे, एक डाकिया दो पत्र ले आया। उनमें से एक पत्र नरेन बाबू तथा दूसरा मल्लिक महाशय के लिए था।

नरेन बाबू ने सबके समक्ष अपना पत्र सावधानीपूर्वक पढ़ा। कलकत्ता के एक ब्रह्मवादी प्रचारक द्वारा लिखा गया पत्र इस प्रकार था :

नरेन बाबू,

लगभग दस दिन से मुझे आपका कोई पत्र नहीं मिला है। पवित्र ब्रह्मवाद को आपसे महान आशाएँ हैं। आपको वृन्दावन के युवाओं के मन को मूर्तिपूजा की खाई में गिरने से बचाना चाहिए। वैष्णवों के पास केवल उनके मधुर कीर्तनों के सिवाय देने के लिए और कुछ नहीं है। यदि आप अल्पावधि में कुछ नई धुनें सीख सकें, तो हरेन्द्र बाबू उन सुरों से कुछ नये ब्रह्मवादी गीतों की रचना कर सकते हैं। कृपया ब्रह्मवाद के प्रचार का अपना साप्ताहिक विवरण भेज दीजिए। मैं आपको स्मरण करवाना चाहूँगा कि आपकी मासिक अल्प दान राशि बकाया है।

आपका सुहृद,
श्री ...

नरेन बाबू ने पत्र पढ़ा, मन्द मुस्काए और धीमे स्वर में बोले, "आओ, देखें क्या होता है। शायद अब ब्रह्मवादियों को मुझसे अल्प मासिक दान राशि की आशा नहीं करनी चाहिए।"

मल्लिक महाशय नित्यानन्द बाबाजी का पत्र प्राप्त करते हैं

नरेन बाबू द्वारा पत्र पढ़ लिए जाने के बाद मल्लिक महाशय ने प्रसन्न मुख से अपना पत्र पढ़ना प्रारम्भ किया।

अहिर टोल से, नित्यानन्द बाबाजी ने लिखा है :

सर्वसौभाग्यवान,

मैं उत्सुकतापूर्वक आपकी आध्यात्मिक कुशलता के समाचार की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। कल रात मैंने स्वप्न में आपको वैष्णव वेश में संकीर्तन कार्यक्रम में नाचते हुए देखा। यदि यह सत्य है, तो मुझे कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि आपको योगी बाबाजी का पवित्र संग प्राप्त हुआ है। परिणामस्वरूप, इसमें कोई संशय नहीं है कि आपको भक्ति लता का बीज अवश्य ही प्राप्त हो गया है।

जैसाकि कृष्णदास कविराज ने लिखा है,

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान् जीव।
गुरुकृष्ण-प्रसादे पाय भक्तिलता बीज॥

"सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में भ्रमण करते हुए सभी जीवात्माओं में से कोई बिरला जीव ही, जो अत्यन्त भाग्यवान् है, कृष्ण की कृपा से एक प्रामाणिक गुरु के संग का अवसर प्राप्त कर पाता है। तथा ऐसा व्यक्ति गुरु और कृष्ण की कृपा से भक्ति लता का बीज प्राप्त करता है।"

यद्यपि मैं जानता हूँ कि आपकी विशेष रूप से योगाभ्यास करने की इच्छा है। परन्तु केवल शुष्क योगाभ्यास मत करें। यद्यपि बाबाजी एक योगी हैं, परन्तु वे एक रसिक भी हैं। उनसे रस तत्त्व पर कुछ उपदेश लीजिए। यदि सम्भव हो, तो बाबाजी की सहमति से परम पूज्य पण्डित बाबाजी के दर्शन कीजिए। परन्तु दुर्भाग्यवश आपका संग अच्छा नहीं है। ब्रह्मवादी, ईसाई तथा मुस्लिम मनोकल्पना तथा तर्क-वितर्क में बहुत रुचि रखते हैं। उनका संग एक रसिक के हृदय रूपी भण्डार को सुखा देता है। केवल यह जान लेना ही पर्याप्त नहीं है कि भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं तथा सभी को उनकी उपासना करनी चाहिए। उपासना दो प्रकार की होती है—अन्तरंगा या आन्तरिक, तथा बहिरंगा

या बाह्य। बहिरंगा उपासना शुष्क चिन्तन द्वारा नियंत्रित होती है। इसका उदय प्रार्थना, भजनों, कृतज्ञता तथा कर्तव्य द्वारा होता है। अन्तरंगा उपासना का कोई ऐसा भाव नहीं है, परन्तु अन्तरंगा उपासना के कार्यकलाप स्वत: ही आत्मा के अवर्णनीय, गुह्य आकर्षण के कारण किये जाते हैं।

मुझे आशा है कि आप इस अधम वैष्णव के सुझाव को स्वीकार करेंगे तथा उसके अनुसार कार्य करेंगे। आज यहीं पर समाप्त करता हूँ।

अकिंचन,
श्री नित्यानन्द दास

पत्र की विषय वस्तु सुनकर दोनों बाबू आत्मग्लानि का अनुभव करते हैं

नरेन बाबू ने विशेष ध्यानपूर्वक पत्र सुना। वे गहरी श्वास लेते हुए बोले, "इस शुष्क मनोकाल्पनिक दर्शन पर धिक्कार है! बाबाजी ने जो भी लिखा है, वह पूर्ण रूप से सत्य है। आनन्द बाबू, हाय! क्यों हमने इतने दिनों से नित्यानन्द दास बाबाजी से बात नहीं की? बाबाजी मल्लिक महाशय के पास आते थे और हम उन्हें बुरा संग समझकर वहाँ से चले जाते थे। यदि परम भगवान् हरि हमें पुन: कलकत्ता ले जायेंगे, तो हम अपने सभी अपराधों के लिए उनसे क्षमा याचना करेंगे।"

दो बाउल बाबाजी कीर्तन करते हुए प्रवेश करते हैं

नरेन बाबू की बात समाप्त होने से पहले, दो बाउल बाबाजी वहाँ पहुँच गये। उन्होंने अपने हाथों में जलपात्र तथा गोपीयन्त्र नामक एक तार का वाद्ययन्त्र धारण किया हुआ था। उनकी मूँछें तथा दाढ़ियाँ थीं, उनके बाल सिरों पर मुकुट के समान बंधे हुए थे और वे कौपीन तथा बाह्य वस्त्र पहने हुए थे। दोनों बाबाजी यह गीत गाते हुए वहाँ पहुँचे :

आरे! गुरुतत्त्व जेने कृष्णधन चिन्ले ना
ध्रुव प्रह्लादेर मत एमन भक्त आर हबे ना
देख चातक नामे एक पक्ष, तारा कृष्ण नामे हय दक्ष,

केवल मात्र उपलक्ष्य, बले फटिक जल दे ना तारा
नब धन वारि विने, अन्य वारि पान करे ना
देख सर्व अंगे भस्म माखा, आर सर्वदा श्मशाने थाका,
गांजा भाँग धुतुरा फाँका, भावरसे हय मगना
से ये त्रिपुरारि, प्रेम भिखारी, कृष्णपद वै जाने ना
जाते अति अपकृष्ट, मुचिरामदास प्रमीर श्रेष्ठ
महाभावेते निष्ठा, करे इष्ठ साधना
तार मन ये चांगा, का टुयाय गंगा, गंगाते गंगा थाके ना

"हाय! गुरुतत्त्व को न समझकर तुम कृष्ण रूपी खजाने को नहीं समझे। ध्रुव और प्रह्लाद जैसे भक्त आज नहीं मिल सकते। चातक नामक पक्षी कृष्ण नाम का उच्चारण करने में निपुण होता है। परन्तु वास्तव में यह केवल दिखावा है, क्योंकि वह केवल निर्मल जल प्राप्ति की इच्छा कर रहा है। वे नवीन बादल द्वारा दिये गये जल के अतिरिक्त अन्य जल नहीं पीते। देखो! इसके अंगों पर राख लगी हुई है और वह सदैव श्मशान में रहता है। वह गांजा पीता है और भाँग तथा धतूरा लेता है और भाव में लीन रहता है। वह त्रिपुरारी (शिव) है, जो प्रेम की भिक्षा माँगता है और केवल कृष्ण के चरणकमलों को ही जानता है। मुचि रामदास भगवान् का महानतम् प्रेमी है, यद्यपि वह निकृष्ट जाति से है। वह अपने आराध्य भगवान् की उपासना करते हुए महाभाव में स्थित है। उसका मन पवित्र है, इसलिए उसे गंगा जाने की आवश्यकता नहीं है—उसे अपने जलपात्र में ही गंगा मिल जाती है।"

बाउल वास्तव में निराकारवादी हैं

गीत समाप्त करने के बाद, उन्होंने थोड़ा विश्राम किया और फिर योगी बाबाजी के आदेश पर पश्चिम दिशा की ओर आगे बढ़ चले।

आनन्द बाबू ने जिज्ञासा की, "वे कौन हैं?" बाबाजी ने कहा, "वे बाउल सम्प्रदाय के बाबाजी हैं। उनका दर्शन हमसे भिन्न है। यद्यपि वे श्री चैतन्य महाप्रभु के नाम का महिमागान करते हैं, परन्तु हम उन्हें वैष्णव नहीं कहेंगे।

इसका कारण यह है कि उन्होंने अपने खुद के मनोकल्पित दर्शन की शरण ले ली है, जो घृणास्पद है। वास्तव में वे निराकारवादी हैं।"

चार सम्प्रदायों के चार आचार्यों के दर्शन का सामंजस्य तथा एकत्त्व

नरेन बाबू ने विनम्रतापूर्वक पूछा, "बाबाजी महाशय, वैष्णव दर्शन में कितने मुख्य पंथ हैं? उनका दर्शन किन विषयों पर मिलता है?"

बाबाजी ने कहा, "वैष्णव दर्शन में वास्तव में चार सम्प्रदाय हैं। इन सम्प्रदायों के नाम हैं—श्री सम्प्रदाय, मध्व सम्प्रदाय, विष्णुस्वामी सम्प्रदाय तथा निम्बार्क सम्प्रदाय। रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी तथा निम्बार्काचार्य इन चार दर्शनों के मूल प्रचारक हैं। वे सभी दक्षिण भारत में जन्मे थे। सभी सम्प्रदाय निम्न सिद्धान्तों पर एकमत हैं :

(१) परम भगवान् एक और अद्वितीय हैं। वे सभी दिव्य शक्तियों से पूर्ण हैं तथा सभी नियमों के परम नियंत्रक हैं।

(२) परम भगवान् का अत्यन्त सुन्दर, पूर्ण शुभ आध्यात्मिक स्वरूप है। वह स्वरूप भौतिक जगत् के सभी नियमों से परे है। उनमें सभी विपरीत तथ्यों का सामंजस्य हो जाता है।

यद्यपि उनका एक स्वरूप है, वह सर्वव्यापक हैं। एक स्थान पर रहते हुए भी, वे समानांतर रूप से सर्वत्र पूर्णरूप से स्थित हैं। यद्यपि वह सर्व सौंदर्यपूर्ण हैं, भौतिक इन्द्रियाँ उन्हें अनुभव नहीं कर सकतीं।

(३) सजीव तथा निर्जीव वस्तुएँ दोनों ही उनकी शक्तियों से उत्पन्न हुए हैं। वे ही समय, स्थान तथा नियम के रचयिता, पालक तथा विनाशक हैं।

(४) जीवात्मा का वास्तविक स्वरूप आध्यात्मिक है, परन्तु भगवान् की इच्छा से वह भौतिक प्रकृति द्वारा बद्ध हो गया है और इस कारण उन नियमों के अधीन सुख या दुःख प्राप्त करता है। तथापि, भक्ति (प्रेममयी सेवा) की प्रक्रिया द्वारा वह भौतिक बन्धन से मुक्त हो जाता है।

(५) ज्ञान तथा कर्म के मार्ग कठिनाइयों से भरे हैं। जब ज्ञान तथा कर्म भक्ति के लिए प्रयोग किये जाते हैं, तब उनमें कोई दोष नहीं है। परन्तु कर्म और ज्ञान से विपरित, भक्ति पूर्णतः स्वतन्त्र है।

(६) जीवात्मा का कर्तव्य साधुओं का संग करना तथा भगवत्सेवा की चर्चा करना है।

श्री चैतन्य महाप्रभु मध्व सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखते हैं। नेड़ा, दरवेश, सांई, ये सभी धर्मध्वजी तथा अभक्त हैं

"श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं को मध्व सम्प्रदाय का एक सदस्य समझते थे। इसलिए हम उसी पंथ से सम्बन्ध रखते हैं। बाऊल, सांई, नेड़ा, दरवेशों, कर्ताभाजाओं तथा अतिवादियों के दर्शन अभक्तों के दर्शन हैं। उनके उपदेश तथा कार्यकलाप अत्यन्त असंगत हैं। उनकी शिक्षाओं की चर्चा करने के कारण अनेक लोगों का वैष्णव दर्शन के प्रति सम्मान नष्ट हो जाता है। वास्तव में उन ढोंगियों की गलतियों के लिए वैष्णव धर्म को दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

महाप्रभु का वैष्णव धर्म का प्रचार बंगाल में प्रसिद्ध है। वहाँ गोस्वामियों की शिक्षाएँ ही स्वीकृत हैं, न कि बाऊलों की शिक्षाएँ।"

महाप्रभु की शिक्षाएँ गोस्वामियों के ग्रन्थों में शुद्ध रूप में प्रदर्शित हैं

इस प्रसंग पर नरेन बाबू ने पूछा, "क्या चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाएँ किसी विशिष्ट पुस्तक में संकलित की गई हैं?"

बाबाजी ने कहा, "नहीं, महाप्रभु ने कोई पुस्तक नहीं लिखी। उनकी शिक्षाएँ पूर्ण रूप से उनके पार्षदों की पुस्तकों में प्रस्तुत की गई हैं। श्री सनातन, श्री रूप, श्री जीव तथा श्री गोपाल भट्ट—महाप्रभु के ये चार साधु पार्षदों के ग्रन्थ विशिष्ट रूप से सम्मानित हैं।"

नरेन बाबू ने पूछा, "बाबाजी, उन्होंने कौन से ग्रन्थ लिखे हैं तथा वे कहाँ उपलब्ध हैं?"

बाबाजी ने कहा, "उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। उन सबका नाम बताने में अधिक समय लगेगा। मैं कुछ ग्रन्थों के नाम बता रहा हूँ। श्री जीव गोस्वामी ने *षट् सन्दर्भ* लिखे। इन ग्रन्थों में भक्ति के विज्ञान का विशिष्ट रूप से वर्णन किया गया है। भक्ति के सभी विषय इन ग्रन्थों में संकलित हैं।"

सभी विषयों तथा विज्ञानों में विशिष्ट ज्ञान विद्यमान होता है, किन्तु भक्ति का विज्ञान सर्वोपरि है

"संसार के प्रत्येक विषय में कुछ ज्ञान होता है। विद्युतशास्त्र, जल, धुएँ, जीवन तथा संगीत के विज्ञानों में कुछ ज्ञान अवश्य है। जब तक इन विज्ञानों की विधिवत् परिचर्चा न की जाए, कोई भी उनके विषय में यथार्थ ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। भक्ति का विज्ञान संसार के सभी विज्ञानों में से सर्वाधिक गम्भीर है। यदि भक्ति वैज्ञानिक न होती, तो इसकी परिचर्चा कैसे की जा सकती? आधुनिक धर्मों में भक्ति का विज्ञान नहीं पाया जाता। सनातन धर्म का विकास आर्य संस्कृति से हुआ है, तथा वैष्णव धर्म सनातन धर्म का सर्वश्रेष्ठ अंग है। अतः भक्ति का विज्ञान केवल वैष्णव धर्म में सम्भव है। जीव गोस्वामी के *षट् सन्दर्भ* तथा रूप गोस्वामी के *भक्तिरसामृतसिन्धु* में भक्ति के विज्ञान का विस्तृत वर्णन है। ये दोनों ग्रन्थ छप गये हैं। मैं आपसे विशेषतः इन दोनों ग्रन्थों का अध्ययन करने का निवेदन करता हूँ।"

केवल आध्यात्मिक ग्रन्थ पढ़ने तथा तर्क द्वारा भक्ति जागृत नहीं होती

नरेन बाबू ने कहा, "मैं अब समझ गया कि जो आध्यात्मिक ग्रन्थों को नहीं समझते, उनमें अल्प भक्ति होती है।"

बाबाजी ने कहा, "नरेन बाबू, मैं ऐसा नहीं कहता। भक्ति जीवात्मा की स्वरूपस्थिति है और इसीलिए सरलता से सम्पन्न की जा सकती है। यह किसी ग्रन्थ से उत्पन्न नहीं होती। सभी भक्ति ग्रन्थ भक्ति द्वारा उत्पन्न होते हैं। ऐसा नहीं देखा गया कि केवल भक्ति ग्रन्थ पढ़ने से ही कोई भक्ति प्राप्त कर लेगा। अपितु एक मूर्ख की श्रद्धा भक्ति का उदय कर देगी, जबकि बहुत अधिक तर्क ऐसा नहीं कर पायेगा। प्रत्येक जीवात्मा के पास भक्ति का बीज है। उसे उस बीज को अंकुर से वृक्ष के रूप में विकसित करने के लिए एक माली का कार्य करना होगा। भक्ति ग्रन्थों की चर्चा, परम भगवान् की उपासना, भक्तों का संग तथा ऐसे स्थान पर रहना जहाँ भक्त सेवा में लगे हुए हैं, ऐसे कार्यकलाप करना आवश्यक है। जब भक्ति का बीज अंकुरित होता है, तो माली को भूमि

से सभी काँटों तथा अवाँछित पदार्थों को अवश्य ही निकालना होता है। यदि कोई भक्ति के विज्ञान को विधिवत् समझ जाए, तो ये सभी कार्य भलीभाँति किये जा सकते हैं।"

कृष्ण को एक साधारण मनुष्य समझते हुए, नरेन परम भगवान् के स्वभाव के विषय में प्रश्न करते हैं

नरेन बाबू ने कहा, "बाबाजी महाशय, मेरा एक बड़ा सन्देह है। क्या आप कृपा करके इसका निराकरण कर सकते हैं? भगवान् की भक्ति करना जीवात्मा के लिए सर्वोत्तम है। यदि यह भक्ति कृष्ण को अर्पित की जाए, तो यह किस प्रकार उचित है? क्या कृष्ण परम भगवान् हैं? हमने सुना है कि कृष्ण ने एक विशिष्ट समय पर जन्म लिया था, उन्होंने अनेक प्रकार के कार्यकलाप किये, तथा अन्त में उन्होंने एक शिकारी के हाथों अपने प्राण त्याग दिये। तो कृष्ण की भक्ति करना परम भगवान् की भक्ति कैसे हो सकती है? यदि कोई किसी साधारण व्यक्ति की उपासना करे, तो क्या इसे भक्ति कही जा सकता है? यदि कोई भगवान् चैतन्य की सेवा के लिए कृष्ण की उपासना छोड़ देता है, तो मैं मानता हूँ कि वह अत्यन्त लाभ प्राप्त करेगा, क्योंकि भगवान् चैतन्य अपने सद्गुणों के कारण अनेक बार परम भगवान् का संग करने में समर्थ हुए थे।"

यद्यपि परम भगवान् एक हैं, वे कर्मियों, ज्ञानियों तथा भक्तों के समक्ष भिन्न-भिन्न रूप में प्रकट होते हैं

बाबाजी ने कहा, "नरेन बाबू, यदि कृष्ण की अवहेलना कर दी जाए, तो वैष्णव धर्म की क्या महानता बचेगी? एकेश्वरवाद पर आधारित अनेक धर्म हैं, परन्तु उनमें कुछ भी *रस* या प्रेम रस नहीं है, क्योंकि उनमें से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण अनुपस्थित हैं। साधना में तीन विषय हैं : साधक अथवा उपासक; साधन या उपासना तथा साध्य अथवा उपासना का विषय। भक्ति के कार्यों के सम्पादन में आध्यात्मिक साधक, साधन तथा साध्य की उचित योग्यता होनी अनिवार्य है। परम सत्य के अनुसरण में साधन के तीन विभाग हैं—कर्म, ज्ञान तथा भक्ति। कर्म के मार्ग में साधक अपने कर्तव्य या उसके फल

से अत्यन्त आसक्त रहता है। इस दशा में कर्म ही स्वयं साधन होता है। कोई चाहे तो इच्छा से या बिना इच्छा के कार्य कर सकता है। इस पथ में परम भगवान् साध्य हैं, जो कर्म का फल प्रदान करते हैं। ज्ञान के मार्ग में साधक ध्यानी होता है, ध्यान ही साधन होता है, तथा साध्य ब्रह्म होता है—जो कष्टप्रद ध्यान का विषय है। भक्ति के पथ में साधक प्रेम से परिपूर्ण रहता है, और साध्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् होते हैं। जिस पथ के लिए उसकी रुचि हो, साधक उसी पथ के लिए योग्य होता है। हम भक्ति पथ के साधक हैं, इसलिए हमें ब्रह्म तथा परमात्मा से कुछ लेना-देना नहीं है। हमारे सभी कार्य परम भगवान् से सम्बन्धित हैं। परन्तु किसी को ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि परमात्मा, ब्रह्म तथा भगवान् भिन्न-भिन्न सत्य हैं। साध्य केवल एक ही है, परन्तु विभिन्न साधनों द्वारा भिन्न-भिन्न रूप में प्रकट होता है। न ही किसी को ऐसा सोचना चाहिए कि भगवान् की विभिन्न श्रेणियाँ हैं। परम सत्य एक ही परम तत्त्व हैं तथा वे स्वतन्त्र रूप से भौतिक परिस्थितियों से रहित हैं। परन्तु परम भगवान् विभिन्न साधकों के समक्ष उनकी योग्यतानुसार विभिन्न रूपों में प्रकट होते हैं। यदि आप इस पर ध्यानपूर्वक विचार करें, तो आप समझ पायेंगे।"

नरेन बाबू ने कहा, "बाबाजी महाशय, कृपया इस विषय का थोड़ा और स्पष्ट रूप से वर्णन करें। मैं कुछ समझ गया हूँ, परन्तु अन्ततः मैं कुछ भ्रमित हो गया हूँ।"

परमात्मा, ब्रह्म तथा भगवान् के विभिन्न पहलूओं पर चर्चा

बाबाजी ने कहा, "परमात्मा, ब्रह्म तथा भगवान् तीन पहलूओं से युक्त एक ही तत्त्व हैं। परमात्मा जगत् के सृष्टिकर्ता, पालक तथा विनाशक हैं, सभी जीवात्माओं के नियंत्रक हैं तथा भगवान् की परम शक्ति के प्राकट्य हैं। परमात्मा तथा परमेश्वर दोनों अभिन्न अभिव्यक्तियाँ (आविर्भाव) हैं। जिसने उच्चतर दिव्य दृष्टि प्राप्त कर ली है, वही परमात्मा की अनुभूति कर सकता है। ब्रह्म इस भौतिक जगत् से परे का एक अवर्णनीय प्राकट्य है। ब्रह्म अपरिवर्तनीय तथा सर्वव्यापक है, फिर भी सब कुछ ब्रह्म पर टिका हुआ है। यह प्राकट्य

जीवात्मा की अनुभूति की द्वितीय श्रेणी है। वह व्यक्ति जिनका स्वभाव जड़ पदार्थ तथा जीवात्माओं से भिन्न है, जो सर्वशक्तिमान हैं, जो अचिन्त्य कार्य करते हैं और जिनका स्वरूप पूर्णतया मधुर तथा ऐश्यर्वपूर्ण है, वे भगवान् हैं। परमात्मा के रूप में उनकी शक्ति जगत् में प्रवेश करती है तथा ब्रह्म के रूप में वे पूर्ण रूप से दिव्य हैं, तथापि उनका एक शरीर तथा कार्य होते हैं।"

गहनतापूर्वक विचार करके नरेन बाबू ने कहा, "अब मैं आपके विचारों को समझ गया। मैं समझ गया हूँ कि यह कोई मनोकाल्पनिक रचना नहीं है, अपितु सत्य है। आज मैंने दिव्य आनन्द का आस्वादन किया है। वैष्णव धर्म सर्वाधिक उदार धर्म है। यह सभी सम्प्रदायों के सिद्धान्तों को स्वीकार करता है तथा इसकी प्रभा अन्य सभी प्रकार के ज्ञान की प्रभा से श्रेष्ठ है।"

आनन्द बाबू ने कहा, "नरेन बाबू, बाबाजी के मुख से अमृत की धारा बहने दो। जब मैं मेरे कर्णों द्वारा इस अमृत का पान करता हूँ, तब मैं भावावेश से पागल हो जाता हूँ।"

नरेन बाबू ने कहा, "आज से मैं परमात्मा तथा ब्रह्म को विदाई देता हूँ। भगवान् ही मेरे हृदय के एकमात्र स्वामी होंगे। मैं केवल उन्हीं से सन्तुष्टि का अनुभव करूँगा।"

भगवान् का ऐश्वर्य तथा माधुर्य; नरेन बाबू तथा आनन्द बाबू का माधुर्य के प्रति स्वाभाविक आकर्षण

बाबाजी ने कहा, "और भी कुछ बताना शेष है। मैंने पहले ही बताया कि भगवान् ऐश्वर्य या वैभव तथा माधुर्य या मधुरता से परिपूर्ण हैं। इसलिए भगवान् के भक्त दो प्रकार के होते हैं। कुछ ऐश्वर्यवान् भगवान् की सेवा करते हैं तथा कुछ माधुर्यपूर्ण भगवान् की सेवा करते हैं। नरेन बाबू, आप किस प्रकार के साधक बनना पसन्द करेंगे?"

नरेन बाबू ने कहा, "इस विषय में मेरा कुछ सन्देह है। यदि हम भगवान् को ऐश्वर्य के बिना स्वीकार करें, तो उनमें उच्चता कहाँ रहेगी? परन्तु जब मैं माधुर्य शब्द सुनता हूँ, तो मैं पागल हो जाता हूँ। मैं नहीं जानता क्यों?"

बाबाजी ने कहा, "भगवान् में ऐश्वर्य तथा माधुर्य दोनों ही हैं। जब माधुर्य

अत्यन्त प्रगाढ़ हो जाता है, तो सम्पूर्ण विश्व पागल हो जाता है।"

नरेन बाबू तथा आनन्द बाबू ने कहा, "हम माधुर्य में रुचि रखते हैं।"

बाबाजी ने कहा, "ऐसी अवस्था में आप कृष्ण के स्वाभाविक भक्त हैं। जब भगवान् का माधुर्य बढ़ जाता है, तब श्रीकृष्ण का स्वरूप आविर्भूत होता है। *भक्तिरसामृतसिन्धु* में इसका सुन्दर वर्णन किया गया है। श्रीकृष्ण सभी कलाओं से परिपूर्ण मधुर चन्द्रमा हैं। उन्हें अपने हृदय रूपी कमलों में प्रकट होने दें।"

योगी बाबाजी के शब्द कभी भी निष्फल नहीं हो सकते। दोनों विषयों की थोड़ी गम्भीर चर्चा करने के बाद, नरेन बाबू तथा आनन्द बाबू ने कहा, "आज से हम कृष्ण के दास हैं। वे हाथ में वंशी धारण किये हुए तथा नवीन बादल के समान वर्ण वाले कृष्णचन्द्र हमारे हृदयों में सुखपूर्वक विश्राम करें।"

बाबाजी ने कहा, "देखा, एक माधुर्य भक्त कृष्ण के सिवाय और किसके पास जा सकता है? क्या ऐश्वर्य भक्त निर्भय होकर नारायण के प्रति प्रेमभाव प्रदर्शित कर सकता है? यदि कृष्ण परम भगवान् न होते, तो क्या हम उनके प्रति सख्य रस, वात्सल्य रस तथा सर्वोत्तम माधुर्य रस अर्पित कर सकते थे?"

नरेन बाबू तथा आनन्द बाबू ने बाबाजी के चरणों की धूलि को अपने सिरों पर लगाया और सन्तुष्टि का अनुभव किया। उन्होंने कहा, "आज से ही, कृपया हमें *भक्तिरसामृतसिन्धु* के उपदेश दीजिए।"

अपने दोनों मित्रों का भाव देखकर मल्लिक महाशय प्रफुल्लित हो गये और सोचने लगे, "महावदान्य गुरुदेव के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है।"

बाबाजी के निर्देशानुसार, दोनों बाबू श्री चैतन्य चरितामृत की चर्चा करते हैं

बाबाजी ने कहा, "यद्यपि आपने अंग्रेजी का अधिक ज्ञान अर्जित कर लिया है, परन्तु आपने संस्कृत का अध्ययन नहीं किया है। *भक्तिरसामृतसिन्धु* एक संस्कृत ग्रन्थ है, अतः आप इसे शीघ्रता से नहीं समझ पायेंगे। अभी कुछ काल के लिए आपको *चैतन्य चरितामृत* पढ़ना चाहिए।"

बाबाजी के आदेश पर एक शिष्य *चैतन्य चरितामृत* की एक प्रति ले आया।

नरेन बाबू तथा आनन्द बाबू ने पुस्तक की एक प्रति ले ली तथा एक कुटिया में उसका गहन अध्ययन करने लग गये। बाबाजी ने उनके सभी संशयों का निराकरण कर दिया। आनन्द बाबू तथा नरेन बाबू ने एक प्रतिज्ञा की कि जब तक वे पूर्ण पुस्तक नहीं पढ़ लेते, तब तक वे कुंज छोड़कर नहीं जायेंगे।

आनन्द बाबू तथा नरेन बाबू एक कुटिया में बैठ गये और मल्लिक महाशय एक अन्य कुटिया में कुम्भक का अभ्यास करने लगे। अनेक श्रोता आकर आनन्द बाबू तथा नरेन बाबू के साथ बैठ गये, तथा वे सब साथ मिलकर *चैतन्य चरितामृत* के श्लोकों का गान करते। उस पाठ का श्रवण अत्यन्त मधुर था।

चैतन्य चरितामृत के पाठ का स्वाभाविक परिणाम— प्रेमाश्रु, नृत्य तथा कीर्तन

ऐसा करते हुए उन्होंने लगभग १० दिनों के पश्चात् सम्पूर्ण ग्रन्थ पढ़ लिया। कुछ पृष्ठ पढ़ते हुए उनकी आँखों से प्रेमाश्रु बहने लगे। कभी-कभी उनके रोम खड़े हो जाते तथा वे पुस्तक को एक ओर रखकर यह प्रार्थना गाते हुए नृत्य करने लग जाते :

'गौराङ्ग' बोलिते हबे पुलक-शरीर,
'हरि हरि' बोलिते नयने बबे नीर।
आर कबे निताई चाँदेर करुणा हइबे,
संसार वासना मोर कबे तुच्छ हबे।
विषय छाडिया कबे शुद्ध हबे मन,
कबे हाम हेरिबो श्री वृन्दावन।
रूप रघुनाथ पदे होइबे आकुति,
कबे हाम बुझव से युगल पिरीति।
रूप रघुनाथ पदे रहु मोर आश,
प्रार्थना करये सदा नरोत्तम दास।

"वह दिन कब आयेगा, जब केवल गौराङ्ग का नाम उच्चारण करने मात्र से ही मेरे शरीर में रोमांच हो जायेगा? तब, जैसे ही मैं 'हरि-हरि' या 'हरे कृष्ण' बोलूँगा, मेरे नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगेगी। वह दिन कब आयेगा जब भगवान् नित्यानन्द प्रभु मुझ पर कृपा करेंगे, ताकि मेरी भौतिक सुखोपभोग की वासना तुच्छ हो जायेगी? जब मेरा मन विषय भोग की इच्छा से मुक्त होकर शुद्ध हो पायेगा, तभी मेरे लिए वृन्दावन की महिमा को समझ पाना सम्भव हो पायेगा। जब मैं रूप गोस्वामी तथा रघुनाथ दास गोस्वामी की शिक्षाओं का अध्ययन करने के लिए उत्सुक हो पाऊँगा, तभी मैं श्री राधा और कृष्ण के मध्य प्रेमव्यापार या लीलाओं को समझने के योग्य हो सकूँगा। मेरी एकमात्र इच्छा श्री रूप गोस्वामी तथा रघुनाथ दास गोस्वामी आदि छः गोस्वामियों के चरणकमलों की प्राप्ति हो। नरोत्तम दास ठाकुर सदैव इस भाव में प्रार्थनाएँ करते हैं।" अनेक वैष्णव बैठकर नरेन बाबू का मधुर कीर्तन सुनते थे। वहाँ भगवान् चैतन्य तथा रामानन्द राय; रूप तथा सनातन के मध्य हुए अन्तरंग संवादों की बहुत चर्चा होती थी। *चैतन्य चरितामृत* को दो बार पढ़ने के बाद उन्होंने *भक्तिरसामृतसिन्धु* का अध्ययन प्रारम्भ किया। बाबाजी प्रसन्नतापूर्वक उन्हें प्रायः निर्देश दिया करते।

नरेन बाबू तथा आनन्द बाबू पवित्र नामों की शरण लेते हैं

एक दिन नरेन बाबू तथा आनन्द बाबू ने बाबाजी के चरणों में प्रणाम किया और कहा, "प्रभु! यदि आप हमें हरे कृष्ण महामंत्र का दान करें, तो हम आपके प्रति कृतज्ञ होंगे।" बाबाजी ने उन्हें बाह्य रूप से स्नान द्वारा तथा आन्तरिक रूप से भक्ति द्वारा शुद्ध करवाकर अविलम्ब ही हरे कृष्ण मन्त्र दे दिया। उसके बाद उन्होंने तुलसी मालाओं पर निरन्तर हरि नाम जप करना प्रारम्भ कर दिया। एक दिन उन्होंने पूछा, "प्रभु! क्या हमें अपने मस्तक पर तिलक लगाना चाहिए?" बाबाजी ने उत्तर दिया, "आप जैसा चाहें, वैसा करें। मैं बाह्य औपचारिकताओं पर बल नहीं देता।"

दोनों बाबू वैष्णव वेश धारण करते हैं

यद्यपि बाबाजी ने बाह्य औपचारिकताओं के प्रति उदासीनता प्रदर्शित की, फिर भी वैष्णव संग के परिणामस्वरूप उन दोनों की वैष्णव वेश धारण करने

की इच्छा विकसित हो गई। जब मल्लिक महाशय ने अगली सुबह नरेन बाबू तथा आनन्द बाबू को तिलक व माला से सज्जित देखा, तो उन्होंने सोचा, "कृष्ण कुछ भी कर सकते हैं।"

उसी दिन से नरेन तथा आनन्द बाबू ने नरेन बाबू द्वारा रचित एक गीत गाया और अपनी मूँछें और दाढ़ी निकाल दी तथा अपने विदेशी जूतों को बाँधकर रख दिया। उन्होंने पूर्ण रूप से गृहस्थ वैष्णव का वेश धारण कर लिया।

दोनों बाबुओं की अन्यों के प्रति करुणा उत्पन्न हो जाती है

संध्या को नरेन तथा आनन्द बाबू ने नरेन बाबू द्वारा रचित एक गीत गाया। उस भजन को सुनकर बाबाजी भावविभोर हो गये।

कबे वैष्णवेर दया आमा प्रति हबे,
आमार बाँधव वर्ग कृष्ण नाम लबे।
शुष्क युक्तिवाद ह ते हइबे उद्धार,
ब्रह्म छाड़ी कृष्णे मति हइबे सबार।
सकलेर मुखे गुरु कृष्ण नाम शुनि,
आनन्दे नाचिब आमि कबे हरि ध्वनि।
प्रभु गुरुदेव पदे प्रार्थना आमार,
मम संगीगणे प्रभु करह उद्धार।

"कब वैष्णव मुझ पर दया करेंगे? कब मेरे बंधुगण कृष्णनाम का कीर्तन करेंगे? तब वे शुष्क तर्कवितर्क के प्रभाव से मुक्त हो जायेंगे और वे ब्रह्म के प्रति आसक्ति को त्यागकर कृष्णभावनाभावित हो जायेंगे। सभी को गुरु और कृष्ण का गुणगान करते देख मैं भावविभोर हो नृत्य करूँगा और हरिनाम कीर्तन करूँगा। भगवान् तथा मेरे गुरुदेव के चरणकमलों में मेरी यही प्रार्थना है, 'हे भगवान्, कृपया मेरे संगीगणों का उद्धार कर दीजिए।'"

❖❖❖

सप्तम किरण

नरेन बाबू ब्रह्मवादी प्रचारक से पत्र द्वारा प्रश्न करते हैं

प्रात:काल नरेन बाबू ने पिछली रात को लिखा हुआ पत्र प्रेषित किया। यह पत्र प्रमुख ब्रह्मवादी आचार्य के नाम पर था। इसमें उन्होंने भक्ति मार्ग का गुणगान तथा शुष्क तर्क की भर्त्सना की थी। उन्होंने विशेष रूप से अपनी मनोस्थिति का वर्णन किया, तथा आचार्य से कुछ प्रश्न किये।

प्रेम कुंज में आयोजित उत्सव जिसमें सभी ने भाग लिया

पत्र भेजने के तुरन्त बाद ही, एक वैष्णव वहाँ आये तथा सभी को प्रेम कुंज में एक उत्सव के लिए आमंत्रित किया। आनन्द बाबू, बाबाजी, मल्लिक महाशय तथा नरेन बाबू, सभी ने वहाँ जाने का वचन दिया।

प्रात: दस बजे, पूजा, प्रार्थनाएँ, तथा शास्त्राध्ययन समाप्त करने के बाद, वे सभी प्रेम कुंज गये। प्रेम कुंज एक दीवार से घिरा तथा अनेक माधवी लताओं से सुशोभित एक सर्वाधिक पवित्र स्थान है। एक विस्तृत बरामदे के सामने भगवान् गौराङ्ग तथा नित्यानन्द प्रभु के श्रीविग्रह स्थापित थे। वहाँ अनेक वैष्णव कीर्तन कर रहे थे।

आगन्तुक वैष्णव धीरे-धीरे आ रहे थे। वे सभी आँगन में बैठ गये तथा अनेक विषयों की चर्चाएँ करने लगे। कुंज में वैष्णवियों के लिए एक कक्ष था। वहाँ प्रेमभाविनी नामक एक वैष्णवी *चैतन्य चरितामृत* का पाठ कर रही थी।

यद्यपि वैष्णवियों का कक्ष अलग था, तथापि पुरुष वैष्णवों के लिए वहाँ प्रवेश निषेध नहीं था।

प्रेम कुंज में महिला कक्ष तथा प्रेमभाविनी का चैतन्य चरितामृत पाठ

नरेन बाबू ने आनन्द बाबू से कहा, "देखा, मुझे ब्रह्मवादियों तथा वैष्णवों

के आश्रमों में कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता। ब्रह्मवादी महिला जिस प्रकार पाठ व गान करती है, वैष्णव महिला भी ठीक वैसा ही करती है। यह व्यवस्था वैष्णवों के लिए कोई नई नहीं है। अत: इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ब्रह्मवादियों ने यह व्यवस्था देखी है तथा इसका अनुकरण किया है।"

धीरे-धीरे आगे बढ़ने के बाद, नरेन बाबू तथा आनन्द बाबू महिला कक्ष में पहुँच गये। उन्होंने भगवान् कृष्ण की महिला दासियों को धूलि में बैठे हुए देखा। प्रेमभाविनी एक छोटे से आसन पर बैठी थीं तथा शास्त्र पाठ कर रही थीं। वे सादे श्वेत वस्त्र पहने हुई थीं। उनके मस्तक पर लम्बा तिलक अंकित था तथा उनका कण्ठ तुसली माला से सुशोभित था। उनके अंगों पर भगवान् हरि के नाम अंकित थे। उसके समीप एक आचमन पात्र था। उसके चारों ओर बैठी वैष्णवियों ने भी समान वेश धारण किया हुआ था तथा अपने हाथों में जपमाला धारण की हुई थीं। वे सभी चातक पक्षी की भाँति प्रेमभाविनी के मुख को निहार रही थीं। वे मधुर स्वर में *चैतन्य चरितामृत* में से पाठ कर रही थीं (२.२३.९१३) :

कोन भाग्ये कोन जीवेर श्रद्धा यदि हय,
तबे सेई जीव साधुसंग ये करय।
साधुसंग हइते हय श्रवण कीर्तन,
साधना भक्त्ये हय सर्वानर्थ निवर्तन।
अनर्थ निवृत्ति हइते भक्त्ये निष्ठा हय,
निष्ठा हइते श्रवणाद्ये 'रुचि' उपजय।
रुचि हइते भक्त्ये हय 'आसक्ति' प्रचूर,
आसक्ति हइते चित्ते जन्मे कृष्णे प्रीत्यंकुर।
सेइ भाव गाढ़ हइले धरे प्रेम नाम,
सेइ प्रेम 'प्रयोजन' सर्वानन्द धाम।

"यदि सौभाग्यवश किसी जीव की कृष्ण के प्रति श्रद्धा विकसित हो जाए, तो वह भक्तों का संग करना प्रारम्भ कर देता है। जब कोई साधुसंग द्वारा भक्ति में प्रोत्साहन प्राप्त करता है, तो वह साधना के नियमों के पालन तथा श्रवण और कीर्तन द्वारा सभी अनर्थों से मुक्त हो जाता है। जब कोई सभी अनर्थों से निवृत्त

हो जाता है, तो वह दृढ़ श्रद्धा के साथ प्रगति करता है। जब भक्ति में दृढ़ श्रद्धा जागृत हो जाती है, तो श्रवण तथा कीर्तन के लिए रुचि जाग जाती है। रुचि जागृत होने के बाद गहन आसक्ति जागृत होती है तथा उस आसक्ति से हृदय में कृष्ण के प्रति प्रेम का बीज विकसित होता है। जब वह भावपूर्ण अवस्था प्रगाढ़ हो जाती है, तो उसे भगवत्प्रेम कहा जाता है। ऐसा प्रेम जीवन का परम लक्ष्य है तथा सर्व आनन्द का स्रोत है।

रसभाविनी नामक एक श्रोता युवती ने पूछा, "सखी, रति क्या है?"

वह प्रश्न सुनकर प्रेमभाविनी ने उत्तर दिया, "रति प्रेम का नव अंकुरित पौधा है।"

मन्द मुस्कुराकर रसभाविनी ने पुन: पूछा, "रति का वास कहाँ होता है, तथा यह किसके प्रति विकसित करनी चाहिए?"

प्रेमभाविनी एक अनुभवी वैष्णवी थी। उन्होंने पहले भी कई बार ऐसे विषयों पर चर्चा की थी तथा उसके निष्कर्षों को समझ लिया था। रसभाविनी के प्रश्नों को सुनकर, प्रेमभाविनी का हृदय प्रेमभाव से पिघल गया तथा उनके नेत्रों से अविरत अश्रुधारा बहने लगी। उन्होंने कहना प्रारम्भ किया।

"हे सखी, आध्यात्मिक विषयों में सांसारिक चेतना का समावेश मत करो। यह वह रति नहीं है जिसके बारे में तुम ढोंगियों के विकृत इन्द्रियभोग के कार्यकलापों में सुनती हो। भौतिक देह की रति श्मशान में देह के साथ ही भस्म हो जाती है। वह नित्य तुम्हारे साथ नहीं रहती। इस संसार में पुरुष और स्त्री के सम्बन्धों में अनुभव की जानेवाली रति अत्यन्त तुच्छ है, क्योंकि शरीर का सुख देह के साथ ही समाप्त हो जाता है। जीव एक आत्मा है, उसकी एक नित्य देह है। इस नित्य देह में प्रत्येक जीवात्मा स्त्री है, या भोग्य है, तथा श्रीकृष्णचन्द्र ही एकमात्र पुरुष या भोक्ता हैं। भौतिक देह की इच्छाओं को कम करना चाहिए, तथा आध्यात्मिक देह की आवश्यकताओं को बढ़ाना चाहिए। जिस प्रकार एक स्त्री की रति या अनुराग एक पुरुष के प्रति आवेशपूर्वक उत्पन्न हो जाता है, सनातन स्त्री की देह की दिव्य रति श्रीकृष्ण के प्रति प्रवाहित होती है। इन्द्रियविषयों के प्रति हृदय के कामभाव को रति कहते हैं। परन्तु आध्यात्मिक देह का कृष्ण के प्रति स्वाभाविक काम भाव

जीवात्मा की नित्य रति है। हे सखी, यदि वह रति उत्पन्न नहीं हुई, तो तुम व्रज में रहने के लिए सम्मान तथा प्रतिष्ठा आदि सब कुछ क्यों छोड़ोगी? रति एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। यह अहैतुकी है। इन्द्रियविषयों को देखकर यह उत्तेजित हो जाती है। जैसाकि मैंने पहले कहा, रति प्रेम का बीज है। इस बीज को श्रवण तथा कीर्तन की प्रक्रिया द्वारा सींचकर, अंकुरित करना चाहिए।

ऐसा कहते ही प्रेमभाविनी भाव विभोर हो गईं। वे बेचैन हो गईं और चिल्लाते हुए गिर गईं, "हे मेरे हृदय के स्वामी, आप कहाँ हैं?" सभी चिन्तित हो गये तथा उनके लिए कीर्तन करने लगे।

नरेन बाबू ने आनन्द बाबू से कहा, "देखो, यहाँ शुद्ध प्रेम का एक उदाहरण है। वे मूर्ख, जो वैष्णवों को ढोंगी कहते हैं, सबसे अधिक अभागे हैं। वे समझ नहीं सकते कि वैष्णव प्रेम क्या है?"

प्रेम कुंज उत्सव में प्रसाद सेवा

इसी दौरान एक शंख बजाया गया तथा सभी वैष्णव प्रांगण में एकत्रित हो गये। सभी अतिथि वैष्णव उत्सव प्रसाद सेवन करने के लिए नीचे बैठ गये। संन्यासी वैष्णवों के प्रति सम्मान दर्शाने के लिए गृहस्थ वैष्णवों ने प्रतीक्षा की। वहाँ श्री गौराङ्ग तथा नित्यानन्द के नामों का उच्च स्वर में कीर्तन होने लगा। सभी ने 'प्रेम सुखे!' पुकारते हुए प्रसाद ग्रहण करना प्रारम्भ किया। साग ग्रहण करते हुए, एक वैष्णव कुछ तन्तु अपने मुख में डालकर बोले, "अरे! इस साग को खाकर कृष्णचन्द्र को कितने आनन्द का अनुभव हुआ होगा!" कृष्ण-प्रसाद ग्रहण करते हुए, वे यह सोचकर विभोर हो रहे थे कि कृष्ण कितने प्रसन्न हुए होंगे। प्रसाद ग्रहण करने के बाद, सभी प्रेम तथा भक्तिपूर्वक "हरि बोल!" कहते हुए खड़े हो गये।

वैष्णव उच्छिष्ट की महिमा का श्रवण कर दोनों बाबू और मल्लिक महाशय कुछ प्रसाद ग्रहण करते हैं

उत्सव आयोजकों ने मिलकर कुछ वैष्णवों के उच्छिष्ट एकत्रित किये। जब आनन्द बाबू ने योगी बाबाजी से इस विषय में जिज्ञासा की तो बाबाजी ने

उत्तर दिया, "उस प्रसाद को अधरामृत अथवा होठों का अमृत कहा जाता है। जो कोई भी जाति भावना के कारण इस अधरामृत को स्वीकार करने में अनिच्छुक होता है, वह एक मिथ्याचारी है तथा समभाव से रहित है। उसे एक वैष्णव नहीं माना जा सकता। उत्सव का अधरामृत उन लोगों के लिए परीक्षा क्षेत्र है, जो अपनी जाति बुद्धि के अभिमानी हैं। विशिष्ट रूप से, आगन्तुक वैष्णवों ने सभी प्रकार के लोगों को शुद्ध कर दिया है, क्योंकि उनके उच्छिष्ट को प्रेमपूर्वक ग्रहण करने से किसी का भी जन्म का गर्व नष्ट हो जाता है। जब किसी का जन्म का अभिमान नष्ट हो जाता है, तो वह कृष्ण भक्ति प्राप्त कर सकता है। आनन्द बाबू, मल्लिक महाशय तथा नरेन बाबू ने तब उस उच्छिष्ट को अत्यन्त प्रेमपूर्वक तथा भक्तिभाव से ग्रहण किया।

केवल वैष्णव ही मनुष्यों के बीच एकता ला सकते हैं

नरेन बाबू ने कहा, "मैं स्वीकार करता हूँ कि केवल वैष्णव धर्म में ही मानव समाज में सामंजस्य लाने की शुद्धता है। ब्रह्मवादी अपनी समन्वयता के लिए मिथ्या ही गर्व करते हैं, परन्तु व्यवहार में वे उदार नहीं हैं। अब मैं समझा कि धार्मिकता को विकसित करते हुए यह जानना अनिवार्य है कि सभी जीव समान हैं। आर्यों का यह मत है कि सांसारिक व्यापारों तथा जन्म के सन्दर्भ में कुछ भेद करना चाहिए। जब यह समझ लिया जाये कि जाति भेद केवल सांसारिक भेद पर आधारित है, तो ब्रह्मवादियों द्वारा जाति निर्धारण में किये गये दोषारोपण पूर्णतः अप्रासंगिक हैं।" आनन्द बाबू तथा मल्लिक महाशय, दोनों ने नरेन के निष्कर्ष का समर्थन किया।

फिर सभी ने प्रसाद ग्रहण किया। सभी वैष्णवों ने अपने स्थानों में वापिस जाते हुए 'हरि बोल!' का उच्चारण किया। एक वृद्धा वैष्णवी प्रेम कुंज की प्रबंधक थीं। वह स्नेहपूर्वक आनन्दबाबू, नरेन बाबू तथा मल्लिक महाशय को महिला कक्ष में ले गईं तथा उन्हें वहाँ बिठाया। उनके मातृस्नेह भाव के द्वारा वे सभी प्रसन्न हुए। वृद्धा वैष्णवी ने पूछा, "आपका निवासस्थान कहाँ है? आपकी वाणी से ऐसा प्रतीत होता है कि आप कलकत्ता से हैं।"

फिर मल्लिक महाशय, आनन्द बाबू तथा नरेन बाबू ने अपना-अपना परिचय दिया।

प्रेमभाविनी नरेन बाबू की बुआ के रूप में अपना परिचय देती है तथा अतीत की वार्ताओं से उनके स्नेह में वृद्धि होती है

नरेन बाबू का परिचय सुनकर, प्रेमभाविनी आगे बढ़ी और पूछने लगी, "क्या तुम मुझे पहचाने?" नरेन बाबू ने कहा, "नहीं।"

प्रेमभाविनी ने कहा, "क्या तुम बता सकते हो कि तुम्हारी बुआ अब कहाँ है?"

नरेन बाबू ने कहा, "जब मैं बालक था, तब मेरी बुआ काशी चली गई थीं। वे कभी घर वापिस नहीं आईं। मैं उनका स्वरूप कुछ-कुछ पहचान सकता हूँ। वह डाकुओं की कहानियाँ सुनाकर मुझे सुलाया करती थीं।"

प्रेमभाविनी ने कहा, "मैं ही तुम्हारी वह बुआ हूँ! जब मैं तुम्हें छोड़कर काशी चली गई थी, तो वह मेरे लिए अत्यन्त कष्टदायक था। मैं कुछ समय तक काशी में रही, परन्तु वहाँ मुझे अच्छी संगति नहीं मिली, इस कारण मैं वृन्दावन आ गई। मैं पिछले २० वर्षों से इस कुंज में रह रही हूँ। यहाँ आकर मेरी वैष्णव धर्म में आसक्ति हो गई है। मैंने सभी वैष्णव ग्रन्थ पढ़ लिये हैं, साधुओं के प्रवचन सुने हैं और धीरे-धीरे भगवान् हरि के चरणकमलों की शरण ले ली है। यहाँ आने के बाद मैंने तुम्हारा कोई समाचार प्राप्त करने या तुम्हें पत्र लिखने का कोई प्रयास नहीं किया। मैं इस भय से शान्त रही कि यदि मैं तुम्हारे विषय में जानने का प्रयास करूँगी, तो कहीं मैं सांसारिक भँवर में पुनः न गिर जाऊँ। आज तुम्हें देखकर मैं आनन्द विभोर हो रही हूँ। तुम्हें तिलक तथा जप माला से युक्त देखकर, मैं तुम्हें परिवार जन के रूप में नहीं मान पा रही। मेरे पिता की ओर से सभी शाक्त या देवी के उपासक थे। कृपया मुझे बताओ कि तुम एक वैष्णव कैसे बन गये।"

नरेन बाबू ने अपने विषय में सब कुछ बता दिया। यह सुनकर प्रेमभाविनी आनन्द विभोर हो गईं तथा कुछ कह नहीं पाईं। "हे नन्दतनय! हे गोपीजनवल्लभ! कौन समझ सकता है कि किस कारण से आप किसी को

स्वीकार कर लेते हैं तथा उस पर कृपा वृष्टि करते हैं।" ऐसा कहकर प्रेमभाविनी भूमि पर गिर गईं। उनके रोम खड़े हो गये, और उनके शरीर में कम्पन तथा स्वेदन होने लगा।

नरेन बाबू ने अपने पिता की बहन को स्नेहपूर्वक उठाया जैसे कि वे उसकी माँ ही हो। यह देखकर आनन्द बाबू तथा मल्लिक महाशय कुछ विस्मित हो गये। रसभाविनी, कृष्ण कांगालिनी, हरिरंगिनी तथा अन्य वैष्णवियों ने मधुरतापूर्वक कीर्तन करते हुए अपनी देहों पर प्रेमभाविनी की चरणधूलि लगाई। एक वृद्धा वैष्णवी ने कहा, "प्रेमभाविनी का जीवन धन्य हो गया है। उसे भगवत्प्रेम का प्रकाश प्राप्त हो गया है, जो ब्रह्मा के लिए भी प्राप्त करना कठिन है।"

कुछ समय बाद प्रेमभाविनी होश में आ गईं। उन्होंने अपनी आँखें खोली तथा रोते हुए कहने लगीं, नरेन, कुछ दिन और रहो और प्रतिदिन मुझसे मिलने आओ। गुरु के प्रति अपनी भक्ति को स्थिर होने दो। गुरु की कृपा के बिना, कोई भी कृष्ण की कृपा प्राप्त नहीं कर सकता। जब तुम घर जाओगे, अपनी माँ के लिए कुछ व्रजरज ले जाना।

नरेन बाबू ने कहा, "बुआ, यदि आप घर जाना चाहें, तो मैं आपको विशेष ध्यानपूर्वक ले जाऊँगा।"

प्रेमभाविनी ने कहा, "प्रिय, मैं सब कुछ से उदासीन हो चुकी हूँ। मैं अब और अच्छा भोजन, अच्छे वस्त्र, अच्छा घर या प्रेम सम्बन्धों की कामना नहीं करती। मैं स्थिर मन से कृष्ण की सेवा करने की दृढ़ इच्छा करती हूँ। यदि तुमने वैष्णव धर्म की शरण न ली होती, तो मैं तुम्हें अपना परिचय न देती। कृष्ण के भक्त ही मेरे माता-पिता हैं—वे ही मेरे मित्र तथा बन्धु हैं। केवल कृष्ण ही मेरे पति हैं। कृष्ण के साथ जीवन जीना छोड़कर, मैं कहीं नहीं जाऊँगी। तुम सुखी रहो और कृष्ण की उपासना करो।"

वे प्रेम कुंज से प्रस्थान करते हैं तथा मार्ग में कुछ गोपबालकों का वसन्तोत्सव देखते हैं

उस समय योगी बाबाजी ने उन्हें बुला लिया। मल्लिक महाशय, नरेन बाबू

तथा आनन्द बाबू ने वृद्धा वैष्णवी तथा प्रेमभाविनी को प्रणाम किया और कक्ष से बाहर चले गये।

बाबाजी ने कहा, "दिन समाप्त हो चुका है, चलो, अपने कुंज चलें।" ऐसा कहकर चारों वापिस चल दिये।

थोड़ी दूर जाने पर उन्हें एक कदम्ब वृक्ष दिखा। ग्वालबालों के वेश में कुछ व्रजवासी युवक एक वृक्ष के नीचे नृत्य कर रहे थे। नृत्य करते हुए, उन्होंने धीमे स्वर में वसन्त राग में यह गीत गाया :

अभिनव कुटल, गुच्छ समुज्जल,
कुञ्चित कुन्तल भाव।
प्रणयी जने रत, चन्दन सहकृत,
चूर्णित वरघनसार।

जय जय सुन्दर नन्दकुमार।
सौरभ संकट, वृन्दावन तट,
विहित वसन्त विहार।

अधर विराजित, मन्दतर इत,
लोचित निज परिवार।
चटुल दृगञ्चल, रचित रसोच्चल,
राधा मदनविकार।

भुवन विमोहन, मञ्जुल नर्तन,
गति वल्गित मणिहार।
निज वल्लवजन, सुहृत् सनातन,
चित्त विहरदवतार।

"हे सुन्दर नन्दकुमार! आपके वृन्दावन की वसन्त ऋतु की लीलाओं की जय हो, जो पुष्पों की सुगन्ध से परिपूर्ण हैं। आपके घुँघराले बालों पर लगी हुई ताजी कलियाँ अत्यन्त सुशोभित लग रही हैं। तथा आपका शरीर आपकी

प्रेयसियों द्वारा गिराये हुए चूर्ण द्वारा सुशोभित हैं। आपके अधरों की सौम्य मधुर मुस्कान गोपियों को आनन्दविभोर कर देती हैं, तथा आपकी तिरछी चितवन श्रीमती राधारानी को मन्त्रमुग्ध कर देती है। समस्त विश्व को विस्मित करनेवाली आपकी अमृतमय नृत्य भंगिमाओं के कारण आपके गले की रत्नमाला आपके वक्ष पर आगे-पीछे हिलती है। आप शरणागत आत्माओं के नित्य सखा हैं, तथा आपने उनके हृदयों में क्रीड़ा करने के लिए अवतार लिया है। (अथवा, आप सनातन गोस्वामी के हृदय में उनके सर्वोत्तम सुहृद के रूप में वास कर रहे हैं।)"

थोड़ा आगे बढ़कर, आनन्द बाबू ने पूछा, "हे बालकों, आप क्या कर रहे हैं?"

एक लड़का आगे आकर बोला, "हम अपने जीवन की निधि कृष्ण के वसन्तोत्सव में निमग्न हैं।"

आनन्द बाबू ने पूछा, "क्या तुम कुछ धन लोगे?

बालकों ने उत्तर दिया, "कृष्ण की वनविहार लीलाओं के लिए धन की कोई आवश्यकता नहीं होती है। हरे पत्ते, वंशियाँ, छड़ियाँ, गायें, तथा प्रेमीभक्त—ये सब ही कृष्ण की लीलाओं की सामग्रियाँ हैं। कृष्ण की लीलाओं का एकमात्र भाव माधुर्य है। ऐश्वर्य क्या है, हम नहीं जानते। मैं सुबल हूँ, यह श्रीदाम है, यह बलराम है, यह छड़ी है, वह सींग है, यह कदम्ब-वन है और हम सभी कृष्ण के प्रियजन हैं। हमें और किस वस्तु की आवश्यकता है? आप जा सकते हैं, हमारी सेवा का समय निकला जा रहा है।"

व्रजभाव का आस्वादन करते हुए वे योगी बाबाजी के कुंज में प्रवेश करते हैं

आनन्द बाबू तथा नरेन बाबू वह स्थान छोड़कर आगे बाबाजी के पास गये, जिन्होंने उनकी जिज्ञासा का उत्तर दिया, "आप व्रजभाव के विषय में क्यों पूछ रहे हैं? यहाँ सभी में यह भावना है तथा प्रत्येक वस्तु इसी भाव से ओतप्रोत है। वे सभी बालक आध्यात्मिक स्थिति में हैं। देखो, यहाँ तक कि वृक्ष भी कृष्ण की कुंजों में की गई लीलाओं में तन्मय होकर विनम्रतापूर्वक

नीचे की ओर झुक रहे हैं। समय-समय पर पक्षी गाते हैं, 'राधा-कृष्ण।' हाय! जो लोग तर्क-वितर्क में लगे हुए हैं, उनके लिए वृन्दावन अत्यन्त विचित्र दृश्य है।"

ऐसा कहते हुए बाबाजी में भाव के लक्षण प्रकट हो गये। हे राधे! हे वृन्दावनेश्वरी।" उच्च स्वर में कहते हुए वे स्तब्ध हो गये।

बाबाजी की दशा देखकर आनन्द बाबू तथा नरेन बाबू भावविभोर होकर 'हरि! हरि!' गाने लगे तथा नृत्य करने लगे।

आनन्द बाबू ने कहा, "क्या यह विचित्र नहीं है? ब्राह्माचार्य महाशय इन सभी बालकों को श्रीविग्रह मूर्तिपूजा रूपी खाई से निकालना चाहते हैं! मुझे उन्हें ऐसा लिखकर भेजना चाहिए था, 'वैद्यराज! अपनी स्वयं की बीमारी का इलाज करो।'"

कुछ समय के बाद जैसे ही वे योगी बाबाजी के कुंज में प्रवेश किये, वे सभी भावविभोर होकर नृत्य करने लगे।

तर्क-वितर्क को त्यागकर दोनों बाबू वैष्णवों के साथ भक्ति क्रियाएँ करते हैं

प्रतिदिन दोनों बाबू भक्ति ग्रन्थ पढ़ते, परम सत्य की चर्चा करते, हरि कीर्तन करते, परिक्रमा करते, महाप्रसाद ग्रहण करते, श्री विग्रह का दर्शन करते तथा कई अन्य भक्ति कार्य करते। दोनों को वैष्णवों के संग से अधिक कुछ भी रुचिकर नहीं लगा। यदि कोई उनसे तर्क-वितर्क करना चाहता, तो वे कह देते कि तर्क का समय गुजर गया था। "भले ही ब्रह्मवादी तर्क करते रहें कि क्या परम सत्य का स्वरूप है या नहीं तथा धर्म क्या है और अधर्म क्या है? हमें हरि भक्ति का अमृतपान करके भावोन्मत्त रहने दो।"

एस प्रकार कुछ सप्ताह गुजर गये।

❖❖❖

अष्टम किरण

नरेन बाबू के प्रश्नों का ब्रह्मवादी प्रचारक द्वारा प्रत्युत्तर

एक दिन सवेरे नरेन बाबू एक आमलकी वृक्ष के नीचे बैठकर एक लम्बा पत्र पढ़ रहे थे। आनन्द बाबू तथा मल्लिक महाशय कुछ अन्य वैष्णवों के साथ वहाँ आ गये।

आनन्द बाबू ने पूछा, "नरेन बाबू, वह पत्र किसने लिखा है?"

कुछ उदास चेहरे से नरेन बाबू बोले, "आज मुझे ब्राह्माचार्य महाशय का पत्र प्राप्त हुआ है।" आनन्द बाबू की प्रार्थना पर नरेन बाबू ने पत्र पढ़ना प्रारम्भ किया।

बन्धू!

आपका पत्र पढ़कर मुझे अत्यन्त खेद हुआ। मैं नहीं जानता कि आप किसके मिथ्या तर्कों के शिकार हो गये हैं, जिस कारण से आपने परिश्रमपूर्वक अर्जित किये हुए ज्ञान के खजाने को त्याग दिया है। क्या तुम्हें स्मरण नहीं कि मैंने तुम्हारे अन्धविश्वासों का निराकरण करने के लिए कितना कष्ट उठाया था? आप उन्हीं अन्धविश्वासों को पुन: क्यों अपना रहे हैं? ब्रह्मवादियों के आचार्य, यीशु प्रभु (ईसा मसीह) ने कहा है कि सभी कार्यों में से सबसे कठिन है धर्म को सुधारना। लोग अंधविश्वासों को शीघ्रता से नहीं त्यागते, क्योंकि मनुष्य सदैव त्रुटि करता रहता है। यहाँ तक कि ईसा जैसे सन्त भी अपनी पुरानी मान्यताओं का त्याग नहीं कर पाये। इसी कारणवश, तुम्हें कितने भी उपदेश क्यों न दिये गये, तुम्हारी भ्रांत धारणाएँ समाप्त नहीं हुईं। यद्यपि तुम्हारी विचारधारा परिवर्तित हो गई है, फिर भी यह मेरा कर्तव्य है कि मैं तुम्हें सही मार्ग पर लाने का प्रयास करूँ। अतएव मैं तुम्हारे प्रश्नों का एक-एक करके उत्तर दूँगा—इस पर विशेष ध्यान दो तथा समझने का प्रयास करो।

भक्ति के स्वभाव पर ब्रह्मवादी का विचार

तुमने लिखा कि मनुष्य की प्रेम करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति है भक्ति।

तुम यह स्वीकार नहीं करते कि भक्ति एक स्वतन्त्र प्रवृत्ति है। मेरे मतानुसार, भक्ति एक स्वतन्त्र प्रवृत्ति है। लोग इन्द्रियभोग द्वारा पूर्ण रूप से नियन्त्रित हैं, इसलिए भक्ति की प्रवृत्ति का वर्णन नहीं किया जा सकता। जब हम परम भगवान् को 'पिता' कहकर पुकारते हैं, तब उस पिता से प्रेम करने की प्रवृत्ति बाह्य रूप से प्रकट होती है। आन्तरिक रूप से, सर्वव्यापक ईश्वर के साथ अपने अवर्णनीय सम्बन्ध का लक्षण प्रकट होता है। जब हम भगवान् को 'मित्र' कहकर पुकारते हैं, तो सामान्य मित्रता का भाव जागृत होता है, परन्तु आन्तरिक रूप से परमेश्वर के प्रति सम्मान तथा आदर का भाव रहता ही है। अन्य शब्दों में, हम भक्ति की प्रवृत्ति से सुपरिचित नहीं हैं। हम इसे तभी अनुभव कर सकते हैं, जब हम मुक्त हो जायेंगे।

ब्रह्मवादी दर्शन परम सत्य की सुन्दरता को नहीं स्वीकारता

तुमने लिखा है कि ब्रह्मवादी प्राय: परम भगवान् की सुन्दरता का उल्लेख करते हैं। परन्तु यदि उसका कोई स्वरूप ही नहीं है, तो सुन्दरता का प्रश्न ही कहाँ से उठता है? नरेन, यह कैसा तर्क है? यह कृष्ण के विग्रह में श्रद्धा रखने के लिए एक बहाना है। जिस सौन्दर्य का उल्लेख हम करते हैं वह और कुछ नहीं है बल्कि प्रेम करने के लिए एक सम्मोहन मात्र है। उस सुन्दरता को कोई प्रेम के नेत्रों से देख सकता है। वास्तव में, सर्वव्यापक ईश्वर के लिए सौंदर्य होना कैसे सम्भव है?

निराकारवाद में प्रेमभावनाओं पर तर्क की प्रधानता

तुमने लिखा है कि अपनी प्रेम प्रवृत्ति को सुधारने के लिए तर्क का त्याग कर देना चाहिए। इस प्रकार के कथन बिल्कुल व्यर्थ हैं। मनुष्यों में तर्क की क्षमता होने के कारण वे अन्य पशुओं से श्रेष्ठ हैं। यदि वे तर्क का त्याग कर दें, तो वे तुच्छ पशुओं के समान बन जायेंगे। जहाँ तक प्रेमभावनाओं का तर्क से विरोध नहीं होता, वहीं तक उन्हें बढ़ने देना चाहिए। जहाँ प्रेम भावनाओं का तर्क (युक्ति) से विरोध हो जाये, तो प्रेमभावनाएँ कष्टदायक हो जाती हैं। प्रेम प्रदर्शित करते हुए, व्यक्ति सदैव तर्क की शरण लेता है। ऐसा नहीं है कि

परमेश्वर के प्रति प्रेम भावनार्पण ही परम कर्तव्य है। सांसारिक जीवन में जब कोई संतान उत्पन्न करता है तथा दूसरों के प्रति अपना कर्तव्य पालन करता है, तो ये कार्यकलाप भगवान् को प्रिय माने जाते हैं। यदि कोई त्यागी प्रेमभावनाओं की शरण लेता है, तो निश्चित रूप से उसका पतन हो जायेगा। तुम्हें अत्यन्त सावधानीपूर्वक थिओडोर पार्कर की पुस्तकें पढ़नी चाहिए।

ब्रह्मवाद दर्शन में भक्ति स्वरूपविहीन एकेश्वरवाद है

तुमने कहा कि ब्रह्म दर्शन तर्कवाद है, परन्तु ऐसा नहीं है। तुम जानते हो कि इंग्लैंड में एकेश्वरवाद दो प्रकार का है : 'देवत्ववादी' तथा 'आस्तिक।' देवत्ववादी मतावलम्बी को तर्कवादी कहा जाता है। वे परमेश्वर की सत्ता को स्वीकार करते हैं, परन्तु उसकी उपासना नहीं स्वीकारते। आस्तिक लोग उपासना की प्रक्रिया को स्वीकार करते हैं। ब्रह्मवादी उन दोनों को भाई कहते हैं। मुस्लिम तथा ईसाई धर्मों को एकेश्वरवाद नहीं कहा जा सकता। ईसाई तीन व्यक्तियों को एक ही रूप में स्वीकार करते हैं—ईश्वर, ईसा तथा पवित्रात्मा। इस स्थिति में उनका धर्म शुद्ध एकेश्वरवाद कैसे हो सकता है? मुस्लिम धर्म भले ही ईसा या पवित्र प्रेत को स्वीकार न करे, परन्तु उनके लिए शैतान परमेश्वर के समान है। वे भी मोहम्मद को कुछ-कुछ देवता के समान स्वीकार करते हैं। वास्तव में वे एकेश्वरवादी नहीं हैं। एकेश्वरवादी पंथों का निर्माण नहीं करते, वे पुस्तकें लिखते हैं। केवल एक परम ब्रह्म के उपासकों ने ही एकेश्वरवादी पंथ की स्थापना की है। तो क्या तुमने इतने बेहतर पंथ का त्याग करके मूर्तिवाद की खाई में प्रवेश कर लिया है? मैं कह नहीं सकता। यदि ब्रह्मवाद तर्कवाद है, तो भक्तिवादी क्या है? ब्रह्मवादी भाव या प्रेमभावनाओं को स्वीकार करते हैं, परन्तु जब तक भाव प्रतिबन्धित नहीं किया जाता है, वह शनै:-शनै: तर्क से विरुद्ध हो जाता है।

नरेन बाबू को नौकरी लेने का प्रलोभन

नरेन, दिन में स्वप्न देखनेवालों का संग छोड़कर शीघ्र ही कलकत्ता आ जाओ। यहाँ वनविभाग में एक नौकरी का अवसर खुल रहा है। मेरे अनुरोध

पर, मालिक तुम्हें वह पद देने के लिए तैयार हो गया है। परन्तु यदि तुम एक सप्ताह के भीतर नहीं आते, तो तुम उसे प्राप्त नहीं कर पाओगे।

तुम्हारा सुहृद,
श्री ...

ब्रह्माचार्य के पत्र को चार या पाँच बार पढ़कर आनन्द तथा नरेन बाबू ने ध्यानपूर्वक इसके विषयों की चर्चा की। अन्ततः उन्होंने निर्णय लिया कि जो भी ब्रह्माचार्य ने लिखा था, वह सब निरर्थक था।

योगी बाबाजी ब्रह्म दर्शन के दोष दर्शाते हैं तथा सभी पण्डित बाबाजी के मण्डप में जाते हैं

उनके पूछने पर योगी बाबाजी ने उत्तर दिया, "जीवात्मा की भगवत्सेवा (भक्ति) करने की प्रवृत्ति भगवान् से प्रेम करने की प्रवृत्ति से भिन्न नहीं है। आत्मा का लक्षण है राग अथवा प्रगाढ़ आसक्ति। जब वह राग परम भगवान् के प्रति लक्षित होता है, तो इसे भक्ति कहते हैं तथा जब यह *राग* भौतिक वस्तुओं के प्रति लक्षित होता है, तो उसे भौतिक आसक्ति कहते हैं। आपने *भक्तिरसामृतसिन्धु* में जो भी पढ़ा है, वह सत्य है—प्रवृत्तियाँ दो नहीं हैं। यदि आपको कुछ सन्देह है, तो आप पण्डित बाबाजी से उसे दूर करने का निवेदन कर सकते हैं।"

नरेन बाबू स्वयं इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ब्रह्माचार्य ने जो भी लिखा था, वह सब पंथवादी विचारधारा मात्र है।

उस दिन संध्या होते ही नरेन बाबू, आनन्द बाबू, मल्लिक महाशय तथा बाबाजी, सभी पण्डित बाबाजी के दर्शन करने के लिए गये।

पण्डित बाबाजी के मण्डप में लगभग पचास वैष्णव साधु बैठे हुए थे। उनमें से हरिदास तथा प्रेमदास बाबाजी पण्डित बाबाजी के निकट बैठे हुए थे। योगी बाबाजी को उनके संगीगणों के साथ देखकर उन्होंने, 'कृपया आइये!' कहकर सम्मानपूर्वक उनका अभिवादन किया। योगी बाबाजी की मण्डली ने यथायोग्य रूप से प्रणाम किया तथा वहाँ बैठ गये।

प्रेमदास ने जिज्ञासा की, "बाबाजी, मैं देख रहा हूँ कि आपके साथियों ने

अपना वेश बदल लिया है।"

योगी बाबाजी ने उत्तर दिया, "जी हाँ, कृष्ण ने उन्हें पूर्ण रूप से स्वीकार कर लिया है। कृपया आप सभी उन्हें आशीर्वाद दें ताकि उनका कृष्ण के प्रति प्रेम वर्धित हो।"

सभी वैष्णवों ने मिलकर कहा, "निश्चित रूप से ऐसा होगा। आपकी कृपा से क्या सम्भव नहीं है?"

पण्डित बाबाजी रस तत्त्व की चर्चा करते हैं तथा सभी लोगों को सर्व शास्त्रों के सार 'श्रीमद्भागवत्' का आस्वादन करने का उपदेश देते हैं

जब मंडली सुखपूर्वक बैठ गई, तो योगी बाबाजी ने विनम्रतापूर्वक पण्डित बाबाजी को सम्बोधित किया, "बाबाजी, ये सभी मिथ्या तर्कों का त्याग कर कृष्ण भक्त बन गये हैं। अब मुझे विश्वास हो गया है कि ये रस तत्त्व के योग्य हैं। ये आज आपके चरणों में इस विषय पर विस्तृत उपदेश लेने के लिए आये हैं।"

'रसतत्त्व' शब्द सुनकर पण्डित दास बाबाजी भावविभोर हो गये तथा उपस्थित वैष्णवों से आज्ञा माँगी। फिर उन्होंने भगवान् गौराङ्ग के चरणकमलों में पूर्ण दण्डवत् प्रणाम किया, तथा उनके समक्ष *श्रीमद् भागवत* की एक प्रति रखते हुए, परम सत्य के बारे में कहना प्रारम्भ किया।

निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्
शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।
पिबत भागवतं रसमालयं,
मुहुर्हो रसिका भुवि भावुकाः॥

"*श्रीमद् भागवत* के संकलनकर्ता कहते हैं, 'हे दक्ष तथा विचारशील जनों, जो वैदिक कल्पवृक्ष का पका हुआ फल है। यह *श्रीमद् भागवत* इस जगत् में श्री शुकदेव गोस्वामी द्वारा इस प्रकार लाया गया है, जिस प्रकार एक वृक्ष से कोई पका हुआ फल शुक की सहायता से नीचे गिरता है। इस फल तथा दूसरे फलों में अन्तर यह है कि अन्य फलों में छिलका तथा बीज होता है, परन्तु इस फल

में यह नहीं होता है क्योंकि यह केवल रस से परिपूर्ण है। जब कोई ब्रह्म के विषय में सोचता है, जो भौतिक आकाश से परे है, तो वह आध्यात्मिक जगत् में निमग्न हो जाता है। ब्रह्म का शुष्क ध्यान केवल विलय होने तक सीमित है, परन्तु कृष्ण का ध्यान, जिनका वेदों में रस की निधि के रूप में गुणगान किया गया है, भाव जागृत करता है, जो भावुक के जीवन का प्रारम्भ है। इसलिए, हे विचारशील लोगों, आध्यात्मिक अस्तित्व के भाव में प्रवेश करो। रसों के स्रोत कृष्ण की सेवा करो, तथा *श्रीमद् भागवत* रूपी इस फल के रस का पान करते रहो।'"

वास्तविक रस क्या है

"हे रसिक वैष्णवों! रस ही परम लक्ष्य है। जिसे भौतिकतावादी लोग रस कहते हैं, हम उसे रस नहीं कहते। साहित्यशास्त्र के विद्वान किसी वृक्ष के रस को रस नहीं कहते, वे एक मानसिक रस का वर्णन करते हैं जो किसी सामान्य वृक्ष के रस से श्रेष्ठ है। इसी प्रकार हम भी भौतिक देह तथा मन के रस को रस नहीं मानते। वह रस जो आत्मा में अन्तर्निहित है, उसी को हम रस कहते हैं। इसके विपरित, कभी-कभी हम खजूर या गन्ने के रस या उसके उत्पाद गुड़, चीनी, तथा मिश्री को रस पुकारते हैं, तथा हम कभी-कभी नायक तथा नायिका के सम्बन्ध को रस कहकर सम्बोधित करते हैं। परन्तु वास्तव में हम जानते हैं कि सभी आत्माओं के आत्मा, श्रीकृष्ण तथा हमारे आत्मा का सम्बन्ध ही वास्तविक रस है।

"आध्यात्मिक धरातल पर, स्वरूपत: मनुष्य शुद्ध आत्मा हैं। उस धरातल पर कोई भौतिक देह या मन नहीं होते। जो भी मुक्ति की खोज कर रहा है, वह उसी धरातल को प्राप्त करने की खोज कर रहा है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। जब जीव उस स्वरूप अवस्था में स्थित हो जाता है, जो जड़ से परे दिव्य पद है, तो उसे शुद्ध आध्यात्मिक पद कहते हैं। सुख का अमिश्रित भाव, जिसका अनुभव जीव उस अवस्था में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के साथ रहते हुए करता है, उसे ही वास्तविक रस कहा जाता है।"

इन्द्रियभोग का आनन्द भक्तिरस का विकृत प्रतिबिम्ब है, यद्यपि यह भिन्न नहीं है

"भौतिक प्रकृति द्वारा बद्ध होने पर भी, जीवात्मा अपने आध्यात्मिक स्वरूप से अलग नहीं होता। अशुद्ध भौतिक वातावरण के संग के कारण, बद्धजीव का आध्यात्मिक स्वरूप उसके मन के रूप में परिवर्तित हो जाता है। फिर भी वह अपनी वास्तविक स्थिति से अलग नहीं होता। आत्मा में भौतिक अवस्था में श्रद्धा, आशा तथा प्रसन्नता होती है। यद्यपि, इस अवस्था में जीव की स्वरूपस्थिति का रस सुख तथा दु:ख रूपी इन्द्रियभोग के रूप में विकृत हो जाता है। विकार या विकृति क्या है? जब विशुद्ध लक्षण परिवर्तित हो जाते हैं तो वही विकार है। इसी कारण विकार की स्थिति में भी शुद्ध लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। इन्द्रियभोग की क्रियाओं में अनुभव किया जानेवाला रस विकृत आध्यात्मिक रस है। उस अन्तर्निहित आध्यात्मिक रस को आत्मविश्वास द्वारा अनुभव किया जा सकता है। यद्यपि विकृत रस को सामान्य बुद्धि द्वारा ही उस रस से विलग किया जा सकता है, तथापि इसका भेद प्रदर्शित करने के लिए इस हरिनाम का कीर्तन करते हुए अन्तर्निहित आध्यात्मिक रस को भक्तिरस कहते हैं। भक्ति की प्रकृति तथा भौतिक प्रेम का स्वभाव एक-दूसरे से स्वतन्त्र नहीं है। भौतिक अवस्था आध्यात्मिक स्थिति का प्रतिबिम्ब मात्र है। तर्कवादी कुछ स्तर तक आध्यात्मिक रस का अनुभव करते हैं और वे गलती से यह सोचते हैं कि भक्ति का स्वभाव तथा भौतिक प्रेम का स्वभाव भिन्न विषय हैं। जो भक्ति रस से थोड़े परिचित हैं तथा जिन्होंने दोनों के स्वरूप की चर्चा की हुई है, उनके ऐसे मत नहीं होते हैं।

भाव तथा रस में अन्तर—रस समस्त भावों का सम्मिश्रण है

"परम ब्रह्म का रस बँटा हुआ नहीं है, तथापि अचिन्त्य शक्तियों के कारण विविधता से परिपूर्ण है। भाव तथा रस में अन्तर यह है कि अनेक भाव संयुक्त होकर रस का उदय करते हैं। इसी प्रकार आपको जान लेना चाहिए कि 'भावुक' तथा 'रसिक' शब्दों के भिन्न अर्थ हैं। भाव एक चित्र के समान है

तथा रस अनेक चित्रों से युक्त चित्रपट के समान है। जब तक संयुक्त होकर रस को उदित करनेवाले कुछ भावों का वर्णन नहीं किया जाता, 'रस' शब्द का वर्णन नहीं किया जा सकता।

"जब सभी भाव साथ मिल जाते हैं तो रसता प्राप्त होती है। सभी भावों में, जो भाव प्रमुख है उसे स्थायी भाव कहते हैं। अन्य तीन भावों को विभाव, अनुभाव, तथा संचारी भाव की संज्ञा दी गई है। अन्य तीन भावों की सहायता से स्थायी भाव आस्वादनीय बन जाता है तथा रस में परिवर्तित हो जाता है।

"रस का विज्ञान एक समुद्र जैसा है। मैं उस समुद्र की एक बूँद के एक अंश का भी आस्वादन नहीं कर पाया। मैं एक अत्यन्त तुच्छ व्यक्ति हूँ। आपको रस का विषय समझाने की मेरी कोई क्षमता नहीं है। जो कुछ भी भगवान् गौरांग ने सिखाया है, मैं वही सब एक तोते की भाँति दोहरा रहा हूँ।"

तीन प्रकार के रसों की व्याख्या—पार्थिव, स्वर्गीय तथा आध्यात्मिक

"मैं आपको दूसरी प्रकार की व्याख्या से रसतत्त्व समझाने का प्रयास करूँगा। रस तीन प्रकार के हैं—वैकुण्ठ रस या आध्यात्मिक रस; स्वर्गीय रस या स्वर्गलोक का रस; तथा पार्थिव रस या सांसारिक रस। छः प्रकार के भौतिक रस हैं, जैसे—मधुर, जो गन्ने तथा खजूर जैसी वस्तुओं में विद्यमान हैं। स्वर्गीय रस को भावनात्मक संवेदनाओं में अनुभव किया जा सकता है। फलस्वरूप जीवों के मध्य नायक तथा नायिका सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं तथा रस का उदय होता है। आध्यात्मिक रस केवल आत्मा में ही पाया जाता है। यद्यपि यह रस बद्ध जीव में जागृत हो सकता है, यह आत्मा के सिवाय कहीं विद्यमान नहीं होता। जब आत्मा में इस रस की प्रचुरता होती है, तो इसकी लहर मन को स्पर्श कर सकती है। वह लहर मन को पार करके साधक के शरीर में व्याप्त हो जाती है। फिर रसों का आदान-प्रदान प्रारम्भ होता है। आध्यात्मिक रस में श्रीकृष्णचन्द्र ही एकमात्र नायक हैं। एक आध्यात्मिक रस परिवर्तित होकर स्वर्गीय मानसिक रस में प्रतिबिम्बित होता है। फिर पुनः यह आगे सांसारिक रस के रूप में प्रतिबिम्बित होता है। यही कारण है कि तीनों रसों का स्वभाव, नियम तथा विधि एक ही जैसी है। आध्यात्मिक रस वैष्णवों का

प्राण है। अन्य दो रस अत्यन्त निःस्वाद तथा असंगत हैं, यदि वे किसी को आध्यात्मिक रस के धरातल पर लाने के निमित्त नहीं हैं। जो लोग निम्न प्रवृत्तियों द्वारा प्रभावित रहते हैं, वे स्वर्गीय तथा सांसारिक रसों से आकृष्ट रहते हैं। वैष्णव सावधानीपूर्वक स्वर्गीय तथा सांसारिक रसों का त्याग कर केवल आध्यात्मिक रस की कामना करते हैं।"

पार्थिव रस

रस का उल्लेख करते हुए चार प्रकार के भाव अनुभव किये जाते हैं—स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव। आइये, पार्थिव रस का उदाहरण देखते हैं। मधुर रस के प्राकट्य के दौरान कुछ भाव विद्यमान रहते हैं। प्रथमतः मधुर रस के प्रति रति या आसक्ति को स्थायी भाव कहा जाता है। उस रति का विषय विभाव है। विषय दो प्रकार के होते हैं—आश्रय या शरण, तथा विषय या प्रयोजन। मानव की जिह्वा—जिसकी मीठे के प्रति आसक्ति होती है—आश्रय है। जिसके प्रति आसक्ति आगे बढ़ती है, जैसे गुड़, वह विषय है। विषय में लोभित करने के जो सभी गुण होते हैं, उन्हें उद्दीपन कहते हैं। जब मिठे के प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है, तब जो भी लक्षण प्रकट होते हैं उन्हें अनुभाव कहते हैं। उस आसक्ति का पोषण करने के लिए, आनन्द आदि भावनाएँ सञ्चारी भाव कहलाती हैं। जब इन भावों की सहायता से मिठाइयों के प्रति आसक्ति स्वादिष्ट बन जाती है, तो उसे मधुर रस कहते हैं।

स्वर्गीय रस तथा वैकुण्ठ रस से इसकी निकृष्टता

"आइये, स्वर्गीय रस का उदाहरण देखें। स्वर्गीय रस पार्थिव रस से अधिक विस्तृत तथा अधिक उदार है क्योंकि इसका विषय जड़ पदार्थ से अधिक सूक्ष्म है। नायक तथा नायिका, पिता तथा पुत्र या स्वामी तथा सेवक के बीच की आसक्ति को देखें। या मित्रों के बीच आसक्ति को देखें। सभी आसक्तियों में स्थायी भाव अन्य तीन रसों की सहायता से रस बन जाता है।

"जिस प्रकार स्वर्गीय रस पार्थिव रस से अधिक विस्तृत तथा उदार है, उसी प्रकार अन्ततः वैकुण्ठ रस स्वर्गीय रस से अधिक विस्तृत तथा उदार है।

पार्थिव रस में केवल एक ही सम्बन्ध होता है—भोक्ता तथा भोग्य के बीच का सम्बन्ध। स्वर्गीय रस में चार प्रकार के सम्बन्ध होते हैं—दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य। परन्तु स्वर्गीय रस में रस की विषय वस्तु अनुचित तथा निरर्थक होती है। इस कारण से स्वर्गीय रस सनातन नहीं हो सकता। वैकुण्ठ रस में पाँच प्रकार के सम्बन्ध होते हैं—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, तथा माधुर्य। ये दोनों प्रकार के रस (स्वर्गीय तथा वैकुण्ठ) भौतिक पदार्थ तथा आत्मा से सम्बन्धित हैं। यही कारण है कि दोनों रसों में सम्बन्ध के अनुभव समान होते हैं। एकमात्र अन्तर यह है कि वैकुण्ठ रस में सभी सामग्रियाँ सनातन होती हैं तथा अविभाज्य परमात्मा से परिपूर्ण होती हैं। इस कारण उस रस की सनातन अवस्था का अनुभव होता है। स्वर्गीय रस अपूर्ण है, क्योंकि इसकी सभी सामग्रियाँ अनित्य होती हैं तथा उलझन एवं तुच्छ फलों की स्रोत होती हैं।"

वैकुण्ठ रस तर्क पर आश्रित नहीं है

"हमने तीनों अलग रसों के मध्य अन्तर दर्शाये हैं। अब मैं अपनी क्षमतानुसार वैकुण्ठ रस का वर्णन करूँगा।

"समय-समय पर हम तर्कवादियों से सुनते हैं कि वैकुण्ठ रस एक सत्य नहीं है, किन्तु केवल कल्पना है। ऐसा होने का कोई कारण नहीं है, क्योंकि तर्क का आध्यात्मिक विषयों में कोई स्थान नहीं है। जिसने वैकुण्ठ रस का आस्वादन नहीं किया है, वह इस विषय को कभी भी नहीं समझ सकता है। इसलिए जो भाग्यवान् हो गये हैं, वे इस विषय पर तर्क को कोई महत्त्व नहीं देते। आपको रस तत्त्व की अनुभूति साधुओं के संग में आस्वादन करके करनी चाहिए।

"अब देर रात हो गई है। कल फिर मैं अपनी योग्यतानुसार इस विषय की चर्चा करूँगा। आप सभी वैष्णव हैं, इसलिए आप इस विषय में सब जानते हैं। परन्तु चूँकि आपने मुझे अनुमति दी है, इसलिए मैं कह रहा हूँ।"

बाबाजी मौन हो गये तथा सभा समाप्त हो गई। नरेन बाबू तथा आनन्द बाबू आश्चर्यचकित थे तथा वापिस जाते हुए उस विषय की चर्चा करने लगे।

❖❖❖

नवम किरण

रस के विषय में पण्डित बाबाजी की शिक्षाओं के बारे में दोनों बाबुओं का निष्कर्ष

नरेन तथा आनन्द बाबू पण्डित बाबाजी द्वारा सुने हुए विषयों पर अत्यन्त सावधानीपूर्वक मनन करने के कारण सो नहीं पा रहे थे। मल्लिक महाशय एक अन्य कुटिया में कुम्भक का अभ्यास कर रहे थे। बाबाजी ने कृपा करके उन्हें उस अभ्यास का प्रशिक्षण दिया था। आनन्द बाबू तथा नरेन बाबू आपस में चर्चा करने लगे।

नरेन बाबू ने कहा, "आनन्द बाबू, मैं बिल्कुल भी विश्वास नहीं कर सकता कि भक्ति की प्रवृत्ति इन्द्रियभोग की प्रवृत्ति से भिन्न है, जैसाकि ब्रह्मवादी आचार्य द्वारा बताया गया। पण्डित बाबाजी ने जो भी उपदेश दिये हैं, मैं उनसे पूर्णत: प्रभावित हुआ हूँ। मैं नहीं मानता कि बद्ध होने के कारण जीव में एक भिन्न प्रवृत्ति है। आत्मा का सहज कार्य (जो मुक्तावस्था में क्रियाशील रहता है) बद्ध अवस्था में मन की सक्रियता की क्षमतानुसार कार्यरत रहता है। इस कारण आत्मा की आसक्ति भगवान् से विमुखता में परिवर्तित होकर इन्द्रियभोग से आसक्ति के रूप में कार्य करती है। मैं स्वीकार करता हूँ कि दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य, जिन्हें हम लौकिक व्यवहार में देखते हैं, वैकुण्ठ रस के ही रूपान्तर हैं।"

स्वर्गीय प्रेम के सम्बन्ध में नरेन बाबू का यथोचित निष्कर्ष

"दैवी स्वभाव से युक्त लोगों के चरित्र की सभी प्रशंसा करते हैं, जो इस जगत् में पुण्यात्मा लोगों के रूप में जीवन व्यतीत करते हैं। एक सेवक जो अपने स्वामी के प्रति विशुद्ध समर्पण प्रदर्शित करता है तथा स्वामी के लाभ को अपना लाभ समझता है, एक मित्र जो अपने मित्र की खुशी तथा दु:ख को अपना ही मानता है, एक पुत्र जो अपना जीवन अपने पिता को ही अर्पित कर

देता है तथा एक पत्नी जो अपने पति की प्रसन्नता के लिए अपना जीवन देती है—ऐसे पुण्यवान लोग सभी के द्वारा दैवी लोगों के रूप में सम्मानित होते हैं। अत: पण्डित बाबाजी ने स्वर्गीय रस नामक सांसारिक सम्बन्धों के रस के विषय में जो कुछ भी कहा, वह पूर्ण रूप से वैज्ञानिक तथा युक्ति संगत है।

"हमने कई उपन्यासों में पढ़ा है कि किसी अत्यन्त एकनिष्ठ पत्नी ने अपने हृदय के स्वामी के लिए अपना जीवन तक अर्पित कर दिया। उसका चरित्र पढ़कर उस स्त्री के प्रति अत्यन्त श्रद्धा भाव उत्पन्न होता है। पुरुष और स्त्री के मध्य सम्बन्ध देह पर आधारित हैं। जब देह समाप्त हो जायेगी, तो वह प्रेम कहाँ आरोपित किया जायेगा? एक जीवात्मा पुरुष है तथा दूसरा स्त्री—परन्तु मुझे नहीं लगता कि यह स्थिति सनातन रूप से रहती है, क्योंकि पुरुष तथा स्त्री का भेद केवल देह पर आधारित है, आत्मा पर नहीं। इसलिए पुरुष तथा स्त्री के बीच का प्रेम केवल मृत्यु पर्यन्त ही रह सकता है। यदि वेदान्तियों की तरह हम देहान्तरण तथा स्वर्ग लोकों के वास को स्वीकार करते हैं तथा यह मानते हैं कि उस अवस्था में ही उस सच्चे प्रेम की सन्तुष्टि पुनर्जागृत होती है, फिर भी पुरुष तथा स्त्री के मध्य प्रेम सम्बन्ध पूर्ण मुक्तावस्था में उपस्थित नहीं रह सकते। इसलिए मैं पण्डित बाबाजी के वचनों के निष्कर्ष को स्वीकार करने को तैयार हूँ कि ऐसा प्रेम अनित्य है।"

वैकुण्ठ प्रेम के विषय में नरेन बाबू का उचित निष्कर्ष

"इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वैकुण्ठ प्रेम नित्य है। सबसे दुर्भाग्यशाली लोग भी यह स्वीकार करते हैं कि प्रेम ही संसार की सभी वस्तुओं में सर्वाधिक रुचिकर है। कोम्टे तथा अन्य शुष्क चिन्तक स्वीकार करते हैं कि प्रेम ही सर्व आनन्द का मूर्त रूप है। माधुर्य प्रेम दास्य, सख्य तथा वात्सल्य भाव के प्रेम से अधिक श्रेष्ठ है ऐसा उस प्रेम की प्रकृति को देखकर समझा जा सकता है। यदि वैकुण्ठ प्रेम नामक सर्वाधिक श्रेष्ठ प्रेम न होता, तो प्रेम कभी भी शाश्वत न होता। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि उस प्रेम की प्राप्ति ही जीवन का परम लक्ष्य है, जो जीवात्मा का स्वाभाविक जीवन है।"

आनन्द बाबू ने कहा, "बाबाजी के उपदेशानुसार मानव जीवन का एकमात्र

लक्ष्य वैकुण्ठ प्रेम प्राप्त करना ही है। स्वर्गीय प्रेम कभी भी लक्ष्य नहीं हो सकता, क्योंकि यह अनित्य है। तो पार्थिव प्रेम के बारे में तो कहना ही क्या।"

नरेन बाबू ब्रह्मवादी दर्शन का खण्डन करते हैं

(१) भाव तर्क पर निर्भर नहीं करता

"ब्राह्माचार्य ने कहा कि यद्यपि भाव श्रेष्ठ है, तथापि जब तक यह तर्क द्वारा नियंत्रित नहीं होता, यह निन्दनीय हो जायेगा। जरा देखो, उन्होंने कैसी गलती की है! यदि भक्ति भाव का मूर्तरूप है, तो यह तर्क के अधीन क्यों होगी, जो अँधा तथा लंगड़ा है? यदि भाव वैकुण्ठ की ओर तेजी से भागता है, तो तर्क इसे निश्चित रूप से भौतिक जगत् में बाँधे रखने का प्रयास करेगा। तो, जब तर्कवाद भक्ति का अवरोध करे, तब कोई वैकुण्ठ का अनुभव कैसे करेगा? आनन्द बाबू युक्तिपूर्वक आध्यात्मिक विषयों पर तर्क का खण्डन करते हैं।"

(२) अपने पिता के प्रति श्रद्धाभाव भक्ति नहीं है

"ब्राह्माचार्य ने कहा कि जब भगवान् को पिता के रूप में सम्बोधित किया जाता है, तो वात्सल्य रस प्रकट होता है, परन्तु हृदय में सर्वव्यापी परमात्मा के लिए एक अनिर्वचनीय भावना उत्पन्न होती है, जिसे प्रेम प्रवृत्ति कहा जा सकता है। आनन्द बाबू, मैं समझ नहीं सकता कि आचार्य को ऐसा विचारविहीन तर्क क्यों पसन्द है! हम ऐसा क्यों नहीं कहते कि किसी की अपने पिता को प्रेम करने की प्रवृत्ति ही भक्ति की प्रवृत्ति है? यदि प्रेम प्रवृत्ति को अपनी भौतिक देह के पिता पर आरोपित किया जाए, तो वह स्वर्गीय रस की प्रवृत्ति है। परन्तु यदि वही प्रवृत्ति पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् पर आरोपित की जाए, तो वह वैकुण्ठ रस का वात्सल्य है—इसमें विश्वास रखने से किसी की भी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त, सर्वव्यापी परमेश्वर का अर्थ भगवान् ही है, जो समस्त ऐश्वर्यों से परिपूर्ण हैं। जब यह सम्बन्ध दृढ़तापूर्वक स्थापित हो जाता है, तो वे ऐश्वर्य अदृश्य हो जायेंगे तथा माधुर्य प्रकट हो जायेगा।"

ब्रह्मवादी प्रचारक के लिए खेद का प्राकट्य

"यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जीवात्मा की आध्यात्मिक आसक्ति की स्वाभाविक पूर्णता में वात्सल्य तथा सख्य जैसे सम्बन्ध केवल कृष्ण की सेवा में नियुक्त किये जाते हैं। बाबाजी ने केवल वैकुण्ठ रस का वर्णन किया है। आचार्य महाशय के निष्कर्ष को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि वे दुर्भाग्यशाली हैं। उनकी वात्सल्य या सख्य की अपेक्षा शान्त रस में अधिक रुचि प्रतीत होती है, इसलिए मैं समझ पाने में असमर्थ हूँ कि वे भगवान् के विज्ञान को समझने में कैसे प्रगति करेंगे।"

दोनों बाबुओं का माधुर्य रस के प्रति आकर्षण

"आनन्द बाबू, तार्किक लोग इसका तिरस्कार कर सकते हैं, परन्तु मैं ऐसे भगवान् की उपासना करने के लिए लालायित हूँ, जो माधुर्य रस के दिव्य भाव में मधुरता से परिपूर्ण हैं। आपका क्या भाव है?"

आनन्द बाबू ने कहा, "नरेन बाबू, आपने जो कुछ भी कहा है, वह सब से अनमोल हीरे की तरह कीमती है। मुझे भी माधुर्य रस की तीव्र तृष्णा है।"

इस प्रकार वार्तालाप करते हुए रात्रि बीत गई तथा प्रातः हो गई। वह दिन उन्होंने अधिकतर अपने सामान्य कार्य करते हुए व्यतीत किया।

पण्डित बाबाजी पुनः वैकुण्ठ रस के विज्ञान की चर्चा करते हैं

पिछले दिन की भाँति, वे सभी संध्या को पण्डित बाबाजी के मण्डप में गये। हरिदास बाबाजी द्वारा पण्डित बाबाजी को विनम्रतापूर्वक गत रात्रि की वार्ता का पुनर्स्मरण करवाने के बाद, पण्डित बाबाजी ने कहना प्रारम्भ किया, "भगवान् गौरांग के पार्षद श्रील रूप गोस्वामी ने दो पुस्तकें लिखी हैं—*श्री भक्तिरसामृतसिन्धु* तथा *श्री उज्ज्वल नीलमणि,* जिनमें उन्होंने जगत् को वैकुण्ठ रस का पूर्ण विज्ञान समझाया है। इन दो पुस्तकों को पढ़कर कोई भी रस विज्ञान को विस्तारपूर्वक समझ सकता है। क्योंकि ये पुस्तकें अत्यन्त विस्तृत हैं, अतः अल्प बुद्धिवाले लोगों के लिए इनके तात्पर्यों को जल्दी समझना

कठिन है। अत्यन्त विस्तृत विषयों से युक्त होने के कारण अधिकांश लोग उस विषय वस्तु को संक्षेप में सुनना पसन्द करते हैं। मैं उन पुस्तकों के समग्र विषयों का वर्णन करने का साहस नहीं करूँगा। मैं उन पुस्तकों के मुख्य विषयों का परिचय दूँगा। अदोषदर्शी वैष्णव मुझे इस रस के असीमित समुद्र का वर्णन करने के लिए उत्पन्न होनेवाले गर्व के लिए अवश्य ही क्षमा कर देंगे। मैं वैष्णवों का सेवक हूँ, उनके आदेशों का पालन करना मेरे जीवन का परम कर्तव्य है।"

नित्य होने के कारण, वैकुण्ठ तथा परम ब्रह्म विविधता से परिपूर्ण हैं। यदि वे विविधता से रहित होते, तो उनका कोई अस्तित्व ही न होता

"वैकुण्ठ रस नित्य, अनादि तथा अनन्त है। कुछ स्थानों पर उपनिषद् कहते हैं कि परम ब्रह्म निराकार है। उन स्थानों पर यह समझना चाहिए कि भौतिक जगत् में जल, वायु तथा अग्नि के कण अपने-अपने भौतिक लक्षणों के कारण भिन्न होते हैं। ऐसे भौतिक भेद आध्यात्मिक जगत् में विद्यमान नहीं हैं। तथापि, वैदिक साहित्य कभी भी ऐसा नहीं कहते कि आध्यात्मिक जगत् में विविधता नहीं है। अस्तित्व तथा विविधता समानान्तर रूप से सर्वत्र विद्यमान रहती है। प्रत्येक वस्तु का एक विशिष्ट लक्षण होता है, जिसके द्वारा यह अन्य वस्तुओं से भेद प्राप्त करती है। यदि कोई भेद न होता, तो उस वस्तु का अस्तित्व ही नहीं माना जायेगा। यदि परम ब्रह्म विविधता से रहित होता, तो उसे भौतिक सृष्टि से भिन्न कैसे माना जाता? यदि हम ऐसा नहीं कह सकते कि परम ब्रह्म सृष्टि से भिन्न हैं, तो सृष्टिकर्ता तथा सृष्टि एक ही हो जायेंगे। ऐसी स्थिति में आशा, श्रद्धा, भय तथा सभी प्रकार के ज्ञान का अस्तित्व ही नहीं रहेगा।"

ब्रह्म वैकुण्ठ की सीमा तथा आवरण है

वैकुण्ठ का भौतिक सृष्टि से भेद करने के लिए कुछ विशिष्ट लक्षण अनिवार्य हैं। यद्यपि वैकुण्ठ परम सत्य है, यह विलक्षणता के कारण अद्भुत

है। वैकुण्ठ पूर्णत: दिव्य है—भौतिक प्रकृति से परे है। निराकार ब्रह्म वैकुण्ठ का आवरण क्षेत्र माना जाता है। यह भौतिक विविधता समाप्त हो जाने पर तथा वैकुण्ठ की विविधता प्रारम्भ होने से पूर्व, भेद सीमा है।

सनातन विविधता विभिन्न जीवात्माओं तथा भगवान् के बीच भेद स्थापित करती है

"परम ब्रह्म तथा जीवात्मा वैकुण्ठ में निवास करते हैं। वैकुण्ठ में विविधता द्वारा भगवान् का स्वरूप नित्य विद्यमान रहता है तथा जीवात्मा अपनी सिद्ध देहों में नित्य वास करते हैं। विविधता एक जीव को दूसरे जीव में लीन नहीं होने देती और न ही यह जीवात्मा को भगवान् में लीन होने का अवसर देती है। यह विविधता पारस्परिक भिन्नता, परिस्थितियाँ तथा सम्बन्ध विकसित करती है। विविधता को भगवान् से भिन्न नहीं समझना चाहिए। सुदर्शन चक्र भगवान् के अस्त्र रूप में विविधता है। यह भगवान् की शक्ति का प्रथम प्रभाव है।"

वैविध्य क्षमता की शक्ति तीन प्रकार की होती है—सन्धिनी, सम्वित तथा ह्लादिनी

"भगवान् की अचिन्त्य शक्ति भगवान् के विग्रह, जीवात्माओं के शरीरों, दोनों की स्थिति तथा आध्यात्मिक जगत् के रूप में अपने प्रभाव का प्रदर्शन करती है।

"वैविध्यपूर्ण शक्तियों की क्षमता तीन प्रकार की है : सन्धिनी, सम्वित्, तथा ह्लादिनी। सन्धिनी शक्ति के प्रभाव से समस्त अस्तित्व प्रकट होता है। शरीर, मृत्यु, काल, संग, संघटक पदार्थ इत्यादि का अस्तित्व सभी सन्धिनी से प्रकट होते हैं। सभी सम्बन्ध तथा भावनाएँ सम्वित् से प्रकट होते हैं। सभी रसों का उद्भव ह्लादिनी से होता है। अस्तित्व तथा सम्बन्ध एवं भावनाएँ, ये सभी रस में चरम सीमा पर पहुँच जाते हैं। निराकारवादी, जो वैविध्य को स्वीकार नहीं करते, शुष्क हैं। विविधता ही आनन्द का प्राण है।"

संसार पूरा जड़ पदार्थ का बना तथा अशुद्ध है, जबकि वैकुण्ठ आध्यात्मिक तथा शुद्ध है

"आइये अब एक विषय को पूरा करते हैं। वैकुण्ठ चिन्मय अथवा दिव्य है, जीवात्मा आध्यात्मिक है, भगवान् दिव्य हैं, उनका सम्बन्ध आध्यात्मिक है, वहाँ सभी कार्यकलाप दिव्य हैं तथा समस्त परिणाम भी दिव्य हैं। आप क्या समझे? जिस प्रकार भौतिक जगत् भौतिक तत्त्वों से बना है, उसी प्रकार आध्यात्मिक जगत् भी उसी प्रकार आध्यात्मिक तत्त्वों से निर्मित है। चित् क्या है? क्या यह विविध प्रकार का पदार्थ है, सूक्ष्म पदार्थ है या पदार्थ से विपरीत है? यह इनमें से कुछ भी नहीं है। चित् एक आदर्श तत्त्व है। चित् जितना शुद्ध है, पदार्थ उतना ही अशुद्ध है।"

चित् का अर्थ—समाधि द्वारा प्राप्त ज्ञान, आत्मा तथा उसका शरीर

"चित् का उल्लेख करते हुए इसकी तत्काल ही ज्ञान से तुलना की जाती है। यह कैसे? हमारा ज्ञान तो जड़ पदार्थ पर आधारित होता है, परन्तु क्या चित् के साथ भी ऐसा होता है? नहीं। यदि आत्मा द्वारा समाधि के माध्यम से शुद्ध ज्ञान प्राप्त किया जाए, तो कोई चित् सम्बन्धी ज्ञान का आस्वादन कर सकता है। ऐसा नहीं है कि चित् शब्द केवल आत्मा की ओर संकेत करता है। आत्मा का स्वरूप या देह चित् का बना हुआ है। अचिन्त्य शक्ति नित्य रूप से चित् नामक संघटकों का सम्मिश्रण प्रकट करती है। वह सम्मिश्रण नित्य रूप से वैकुण्ठ में—निवासस्थान, देह तथा अन्य सामग्रियाँ प्रकट करता रहता है। आत्मा का सम्बन्ध वैकुण्ठ से है, इसी कारण इस संसार में चित् के लक्षण आत्मा के साथ रहते हैं तथा जड़ पदार्थ नामक तत्त्व को प्रतिबिम्बित करते हैं।

"अतएव चित् नामक पदार्थ जड़ पदार्थ, सूक्ष्म पदार्थ, किसी क्षमता के पदार्थ, या पदार्थ के विपरीत तत्त्व निर्विशेष, से अधिक सूक्ष्म तथा आनन्ददायक है।"

चित् या चेतना दो प्रकार की है—प्रत्यग तथा परग

"चित् या चेतना एक ही तत्त्व हैं। हमें चैतन्य शब्द के विषय में थोड़ा जानना चाहिए। चैतन्य दो प्रकार का होता है—प्रत्यग चैतन्य तथा परग चैतन्य। जब वैष्णव प्रेम में तन्मय हो जाते हैं, उस समय प्रत्यग् चैतन्य या आन्तरिक ज्ञान जागृत होता है। जब किसी की प्रेम में तन्मयता भंग हो जाती है, तब वह अपनी बाह्य चेतना में आ जाता है तथा परग चैतन्य जागृत हो जाता है। परग चैतन्य को चित् नहीं कहा जाता, वरन् इसे चित् का प्रतिबिम्ब कहा जाता है।

"मुक्तावस्था में हमारा एक आध्यात्मिक स्वरूप होता है। बद्ध अवस्था में हमारा अस्पष्ट जड़ तथा चेतन रूप होता है। मुक्तावस्था में वैकुण्ठ रस का आस्वादन किया जाता है, तथा बद्धावस्था में इसका अन्वेषण किया जाना चाहिए। हमने उस स्थिति में विकृत रूप में आस्वादनीय रस की चर्चा की है।"

पाँच रसों का परिचय—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य

"समस्त चित् पदार्थ शान्त रस से पूर्ण हैं। सम्बन्ध के अनुसार, रस पाँच प्रकार के हैं। शान्त रस प्रथम है। शान्त रस के कुछ भाव या भावनाएँ होती हैं यथा भगवान् के चरणों की शरण लेना, समस्त भौतिक कष्टों का शमन तथा भगवान् के अतिरिक्त अन्य सब कुछ के प्रति अरुचि। जब शुष्क निराकारवाद या ब्रह्मवाद समाप्त हो जाता है, तो शान्त रस जागृत होता है। सनक, सनातन, सनन्दन तथा सनत्कुमार, सभी पहले निराकारवादी ही थे, फिर वे भगवान् के शरणागत होकर शान्त रस में निमग्न हो गये। स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव तथा सञ्चारी भाव शान्त रस में विद्यमान हैं, परन्तु अप्रकट रूप में। शान्त रस में स्थायी भाव सदैव रति के रूप में विद्यमान रहता है, तथापि अविकसित होने के कारण, यह प्रेम में परिवर्तित नहीं होता।

सौभाग्यवश रस वर्धित होता है तथा रस का द्वितीय चरण, दास्य, जागृत होता है। जैसे ही एक भक्त इस स्थिति में अनुभव करता है कि "भगवान् मेरे स्वामी हैं," एक अन्तरंग आसक्ति उत्पन्न होती है, जो उस प्रेम सम्बन्ध का

पोषण करती है। स्थायी भाव का स्नेह या रति इस रस में पोषित प्रेम के रूप में विकसित होती है। भगवान् तथा जीवात्मा आपसी आदान-प्रदान का सम्बन्ध स्वीकार करते हैं, भगवान् के साथ स्वामी के रूप में तथा जीव सेवक के रूप में।

तीसरा रस है सख्य। स्थायी भाव का स्नेह इस रस में प्रेम की अवस्था से प्रणय की अवस्था में वर्धित हो जाता है। स्वामी तथा सेवक के बीच का सम्मान तथा आदर का भाव पीछे छूट जाता है तथा श्रद्धा दृढ़ हो जाती है।

चतुर्थ रस है वात्सल्य। इस रस में सम्बन्ध प्रेम तथा प्रणय को पार कर स्नेह की अवस्था प्राप्त कर लेता है। इस रस में, श्रद्धा और भी अधिक दृढ होकर वर्धित हो जाती है।

पंचम रस माधुर्य है। स्थायी भाव की रति, इस रस में प्रेम, प्रणय तथा स्नेह को पार कर मान, भाव, राग, तथा अन्ततः महाभाव में विकसित हो जाती है। इस रस में श्रद्धा की दृढ़ता इतनी बढ़ जाती है कि भगवान् तथा भक्त हृदय तथा आत्मा में एक हो जाते हैं।"

वैकुण्ठ के विभिन्न विभाग तथा उन भिन्न क्षेत्रों में रस की स्थिति

वैकुण्ठ में सभी पाँच रस हैं। वैकुण्ठ के बाह्य क्षेत्र ऐश्वर्य से परिपूर्ण हैं। आन्तरिक क्षेत्र माधुर्य से परिपूर्ण हैं। भगवान् नारायण ऐश्वर्य क्षेत्र में रहते हैं तथा भगवान् कृष्ण माधुर्य क्षेत्र में निवास करते हैं। माधुर्य क्षेत्र के दो विभाग हैं—गोलोक तथा वृन्दावन।

"ऐश्वर्य क्षेत्र में शान्त तथा दास्य सदैव रहते हैं। माधुर्य क्षेत्र में सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य शाश्वत रूप से उपस्थित रहते हैं।

"जीवात्मा की रुचि के अनुसार वह एक विशिष्ट क्षेत्र में श्रद्धा रखता है तथा उसमें आनन्द प्राप्त करता है।"

❖❖❖

दशम किरण

रति विचार—रति रस का मूल है

"स्थायी भाव, अनुभाव, विभाव तथा संचारी भाव, इन चारों भावों के सम्मिश्रण के बिना रस का उदय नहीं होता।

"सर्वप्रथम, स्थायी भाव पर विचार करना चाहिए। रस के उद्‌भव की क्रिया में जो भाव प्रधान होता है, उसे स्थायी भाव कहते हैं। रति स्वयं स्थायी भाव है, क्योंकि जब रति में रुचि उत्पन्न हो जाती है तो यह रस बन जाती है। जब रति विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव का आश्रय प्राप्त करती है, तो वह रस बन जाती है। विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव स्वतः ही रस नहीं बनते। विभाव रस के उद्‌भव का एक कारण है। अनुभाव वह क्रिया है जो रस को जागृत करती है। संचारी भाव वह है जो रस के उद्‌भव में सहायता करता है। अतः रति रस का मूल है, विभाव कारण है, अनुभाव क्रिया है तथा संचारी भाव सहायक है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य—इन पाँच प्रकार के रसों के लिए ये परिस्थितियाँ एक समान हैं।"

रति विचार (१) तीन भिन्न लक्षण भाव, उत्कण्ठा, तथा लालसा से परिपूर्ण हैं

"रति क्या है? उत्तर है—स्थायी भाव। कुछ समझ में नहीं आया! रति का अर्थ आनन्दानुभूति तथा तीव्र लालसा से परिपूर्ण अनुकूल अभिव्यक्ति है। आत्मा का प्रथम कार्य रति है। आत्मा ज्ञान से परिपूर्ण है, अतः इसका कार्य है भेद करना। भेद दो प्रकार का है—विचारपूर्ण भेद तथा रसपूर्ण भेद। जब विचारपूर्ण भेद पोषित होता है, तो ज्ञान की समस्त शाखाएँ प्रकट हो जाती हैं। जब रसपूर्ण भेद बुद्धि प्रकट होती है, तो उसे रति कहा जाता है। रति के लक्षण ये हैं कि यह अनुकूल अथवा उन भावनाओं से परिपूर्ण होती है, जो आराध्य भगवान् की इच्छाओं की पूर्ति करती है, यह आनन्द से परिपूर्ण है अथवा

आराध्य भगवान् से सम्बन्धित पूर्ण उत्कण्ठा से युक्त है। तथा तीव्र लालसा से परिपूर्ण है या आराध्य भगवान् को प्रसन्न करने की दृढ़ इच्छा से परिपूर्ण है।

रति विचार (२) रस के लिए प्रयास के प्रादुर्भाव को रति कहते हैं, न कि रुचि

"रस की प्राप्ति के लिए आत्मा के प्रयास के प्रथम अंकुरण को रति कहते हैं। कुछ लोग इस प्रयास के अंकुरण को रुचि कहते हैं, परन्तु वह तर्कसंगत नहीं है क्योंकि ज्ञान के साथ रस के लिए किये गये आत्मा के प्रयास के उद्गम को रुचि कहते हैं। शुद्ध रस की प्राप्ति के प्रयास का उद्भव रति कहलाता है। शुद्ध ज्ञान प्राप्ति के प्रयास के उद्भव को वेदना कहते हैं। क्योंकि अन्य भाव रति द्वारा बल प्राप्त करते हैं तथा रस के जागरण की क्रिया में विद्यमान रह सकते हैं, इसलिए रति को स्थायी भाव कहते हैं। वैकुण्ठ रस में, आत्मा की रति या आसक्ति को स्थायी भाव कहते हैं। स्वर्गीय रस में मन की रति या आसक्ति को स्थायी भाव कहते हैं। इसी कारण सामान्य वाक्पटु लोगों ने इस रति को मन की आनन्दानुभूति कहा है। पार्थिव रस में वह रति, जो इन्द्रियों को प्रफुल्लित कर देती है, स्थायी भाव कहलाती है।

"जब शान्त तथा दास्य से प्रारम्भ होनेवाले पाँच सम्बन्ध, भाव से मिश्रित होते हैं, तो गुप्त रति प्रकट होती है तथा शनैः शनैः प्रेम, स्नेह, प्रणय, मान, रति, राग, अनुराग तथा अन्ततः महाभाव के रूप में उद्घाटित होती है। रति के पोषण के साथ इच्छित रस भी पोषित होता है।"

विषय तथा आश्रय में अन्तर, जो विभाव के अन्तर्गत ही दो प्रकार के आलंबन हैं

"विभाव आलम्बन (जिसमें प्रेम प्रकट होता है) तथा उद्दीपन (जिसके द्वारा प्रेम प्रकट होता है) नामक दो भागों में विभक्त है। आलम्बन को और आगे विषय तथा आश्रय के रूप में विभक्त किया जा सकता है। आश्रय वह

है जो रति को धारण करता है। रति का विषयवस्तु विषय है। यद्यपि परम सत्य एक है, विभिन्न रसों में उसके विभिन्न उदाहरण हैं। भगवान् नारायण ऐश्वर्य रस के उदाहरण हैं। श्रीकृष्ण माधुर्य रस के उदाहरण हैं। शृंगार रस की सहायता से मैं एक उदाहरण दूँगा। कृष्ण तथा उनके भक्त आलम्बन के उदाहरण हैं। कृष्ण की अपने भक्तों के प्रति आसक्ति की स्थिति में, कृष्ण आश्रय हैं तथा भक्त विषय है। तथा भक्त की कृष्ण के प्रति आसक्ति की अवस्था में कृष्ण विषय हैं तथा भक्त आश्रय हैं।"

विभाव के अन्तर्गत उद्दीपन

"आश्रय तथा विषय के सभी गुण उद्दीपन हैं। विशेष रूप से, उद्दीपन विषय के गुण हैं जो रति को आकृष्ट करते हैं। माधुर्य से पूर्ण श्रीकृष्णचन्द्र के गुण असीमित तथा अनन्त हैं। जीवात्मा उन गुणों से मुग्ध हो जाते हैं। जीवात्मा की कृष्ण में आसक्ति का उद्दीपन ही वे गुण हैं। कृष्णचन्द्र भी अपने भक्तों के उनके प्रति स्नेह जैसे गुणों से आकृष्ट हो जाते हैं। ये सभी गुण कृष्ण की आसक्ति के उद्दीपन हैं। आसक्ति के उद्भव से सम्बन्धित भाव, विभाव के अधीन हैं।"

माधुर्य रस दो प्रकार का है—स्वकीय तथा परकीय—जिसकी इस सभा में चर्चा नहीं की जानी चाहिए

"शृंगार रस में कृष्ण पुरुष या भोक्ता हैं तथा सभी भक्त स्त्री अथवा भोग्य हैं। कृष्ण पति हैं तथा भक्त उनकी पत्नियाँ हैं। स्वकीय तथा परकीय रसों के सम्बन्ध में ये अत्यन्त गोपनीय तथ्य हैं, जिन्हें अपने आध्यात्मिक गुरु के चरणकमलों में अन्तरंग रूप से समझना चाहिए। यदि मैं सभा में इस विषय का वर्णन करूँगा, तो यह अयोग्य भक्तों के लिए हानिकारक हो सकता है। जब तक कोई उच्चतर श्रेणी में अवस्थित नहीं है, उसे उच्चतर सत्य उद्घाटित नहीं हो सकते। जिस प्रकार सभी वैज्ञानिक ग्रन्थों में शनैः शनैः उच्चतर ज्ञान प्राप्त होता है, उसी प्रकार आध्यात्मिक ग्रन्थों में यथोचित योग्यता द्वारा गोपनीय तथ्य समझे जा सकते हैं।"

कोई भी अपने विशिष्ट रस की अपेक्षा किसी अन्य रस के योग्य नहीं होता

"शान्त रस में स्थित भक्त भगवान् को मित्र के रूप में संबोधित करते हुए काँपता है। वात्सल्य रस का भक्त भगवान् को पति के रूप में संबोधित करते हुए संकोच करता है। माधुर्य रस के स्वकीय भाव का सेवक मान या क्रोध, तथा वाम्य भक्त के अन्य भावों को प्रकट करने में पूर्णतया असमर्थ होता है। जयदेव जैसे महान रसिक जानते हैं कि कृष्ण भक्त की योग्यता की मात्रा में उसके कितने अधीन हो जाते हैं। आप भी रसिक भक्त हैं, इसलिए मैं इस विषय में और नहीं कहूँगा। रस तत्त्व के आधारभूत विषयों के अतिरिक्त, मैं सूक्ष्म उदाहरणों में प्रवेश नहीं करूँगा। विभाव के विषय में, मैं श्रीकृष्ण द्वारा पति या प्रेमी के रूप में आश्रय बनने तथा तीन प्रकार के भक्तों—स्वकीय, परकीय तथा साधारण का वर्णन करूंगा। ये सभी विषय विशेषतया उज्ज्वल नीलमणि का अध्ययन करने से ज्ञात हो जायेंगे।"

अनुभाव

अनुभाव दो प्रकार के हैं : (१) आङ्गिक तथा (२) सात्विक। कुछ लोग सात्विक अनुभाव को एक स्वतन्त्र अंग वर्णित करते हैं। वास्तव में, (दोनों परिस्थितियों में) सार समान ही रहेगा।

(१) आङ्गिक अनुभाव तीन प्रकार का है :

(क) अलङ्कार, भावमय प्रेम के अलंकार; (ख) उद्भास्वर, भावपूर्ण प्रेम का बाह्य प्राकट्य; तथा (ग) वाचिक, भावपूर्ण प्रेम के शाब्दिक प्राकट्य।

(क) अलंकार तीन प्रकार का है : (१) अंगज, देह से सम्बन्धित; (२) अयत्नज, आत्मा से सम्बन्धित; (३) स्वभावज, प्रकृति से सम्बन्धित।

(१) अंगज अनुभाव तीन प्रकार का है : (क) भाव (अत्यन्त प्रसन्नता); (ख) हाव, भाव-भंगिमाएँ (शारीरिक मुद्राएं); तथा (ग) हेला, अवहेलना।

(२) अयत्नज अनुभाव सात प्रकार का है : (क) शोभा (सौंदर्य); (ख) कान्ति (चमक); (ग) दीप्ति (बुद्धिमता); (घ) माधुर्य (मिठास); (ड) प्रगल्भता (आदररहित); (च) औदार्य (उदारता); तथा (छ) धैर्य (धीरता)।

(३) स्वभावज अनुभाव दस प्रकार का है : (क) लीला, (ख) विलास, आनन्दानुभव; (ग) विच्छिति, विच्छेद; (घ) विभ्रम (गुमराह); (ड) किलकिंचित; (च) मोट्टायित; (छ) कुट्टमित; (ज) विव्वोक, (ध्यान न देना); (झ) ललित, आकर्षकता; तथा (त्र) विकृत।*

यहाँ (क) अलंकार अनुभाव का वर्णन समाप्त होता है।

(ख) पाँच प्रकार के उद्भास्वर हैं : (१) वेशभूषार शैथिल्य, कमरबन्ध का शिथिल होना तथा वस्त्रों तथा केशों का शिथिल होना; (२) गात्र मोटनम, शारीरिक विकृति; (३) जृम्भा, जम्भाई (उबासी); (४) घ्राणस्य फुल्लत्वम्, नासिकाग्र का कंपन; तथा (५) नि:श्वास-प्रश्वास, गहरी साँस लेना।

(ग) वाचिक अनुभाव बारह प्रकार के हैं : (१) आलाप, (२) विलाप, (३) संलाप, (४) प्रलाप, (५) अनुलाप,

*श्रील प्रभुपाद *चैतन्य चरितामृत* (२.८.१७५) के अपने तात्पर्य में लिखते हैं, "किलकिंचित, मोट्टायित, तथा कुट्टमित, शब्दों के अंग्रेजी समशब्द नहीं हैं।" तथापि, मध्यलीला अध्याय १४, श्लोक १७०-२०० में कुछ उदाहरण हैं।

(६) उपलाप, (७) सन्देश, (८) अतिदेश, (९) अपदेश, (१०) उपदेश, (११) निर्देश, (१२) व्यपदेश।

यह आंगिक अनुभावों के वर्णन का निष्कर्ष है।

(२) सात्विक अनुभाव आठ प्रकार के हैं :

(१) स्तम्भ, स्तब्ध हो जाना; (२) स्वेद, स्वेदन होना; (३) रोमाञ्च, रोमहर्ष होना; (४) स्वरभंग, कण्ठावरोधन; (५) वेपथु, कंपन; (६) वैवर्ण्य, देह का रंग परिवर्तित होना; (७) अश्रु, रोना; तथा (८) प्रलय, विनाश।

आंगिक तथा सात्त्विक अनुभावों के बीच अन्तर का विचार

"जब तक अंग तथा सत्त्व के बीच में अन्तर को विचारपूर्वक समझा नहीं जायेगा, उपरोक्त विभागों का अर्थ समझ नहीं आयेगा। चित्त समस्त अंगों का निर्देशक है। चित्त की विकृति (बदली हुई प्रकृति) को सत्त्व कहते हैं। सत्त्व की स्थिति में जैसे ही भाव प्रकट होते हैं तथा अंगों में व्याप्त हो जाते हैं, तो उनके प्राकट्य के स्थान के विचार द्वारा वे भाव सात्त्विक विकार कहलाते हैं। परन्तु समस्त आंगिक भाव प्रत्येक अंग में जागृत होते हैं तथा प्रकाशित होते हैं। सात्त्विक विकार प्रत्येक सत्त्व में जागृत होते हैं। सर्व आंगिक विकार आंगिक भावों में प्रकट होते हैं। इन सूक्ष्म भेदों को समझने में थोड़ा समय लगता है।"

तेंतीस संचारी भाव

"जिस प्रकार स्थायी भाव तथा विभाव रस से सम्बन्धित दो मुख्य विभाजन हैं, उसी प्रकार अनुभाव को भी एक मुख्य भाग माना जाता है। जिस प्रकार अनुभाव एक विभाग हैं, उसी प्रकार समस्त संचारी भाव भी एक विभाग हैं। तेंतीस भेद इस प्रकार हैं : (१) निर्वेद, उदासीनता; (२) विषाद, शोक; (३) दैन्य, विनम्रता; (४) ग्लानि, स्वयं को दोषी मानना; (५) श्रम, थकान;

(६) मद, उन्मत्तता; (७) गर्व, अहंकार; (८) शंका, सन्देह; (९) त्रास, सदमा; (१०) आवेग, तीव्र भावना; (११) उन्माद, पागलपन; (१२) अपस्मार, विस्मरण; (१३) व्याधि, बीमारी; (१४) मोह, उलझन; (१५) मृति, मृत्यु; (१६) आलस्य, आलस; (१७) जाड्य, जड़ता; (१८) व्रीड़ा, लज्जा; (१९) अवहित्त, गोपनीयता; (२०) ऋति, स्मरण; (२१) वितर्क, विवाद; (२२) चिन्ता, चिन्तन; (२३) मति, ध्यान; (२४) धृति, सहिष्णुता; (२५) हर्ष, आनन्दानुभूति; (२६) औत्सुक्य, उत्सुकता; (२७) औग्र्य, हिंसा; (२८) आमर्श, क्रोध; (२९) असूया, ईर्ष्या; (३०) चापल्य, धृष्टता; (३१) निद्रा, नींद; (३२) सुप्ति, सुषुप्ति, गहरी नींद; तथा (३३) प्रबोध, जागृति।

व्यभिचारी भाव

"इन संचारी भावों को व्यभिचारी भाव भी कहा जाता है। स्थायी भाव की रति इन सभी द्वारा पुष्ट होती है। यदि स्थायी भाव की तुलना समुद्र से की जाए, तो इन संचारी भावों की तुलना लहरों से की जा सकती है। जिस प्रकार लहरें समय-समय पर शीघ्रतापूर्वक उठती हैं तथा समुद्र का विस्तार करती हैं, इसी प्रकार संचारी भाव रस साधक की रति का निरन्तर विस्तार करके रस वर्धन करते हैं। ये संचारी भाव विशेष रूप से स्थायी भाव की ओर प्रवाहित होते हैं तथा व्यभिचारी भाव कहलाते हैं।"

संचारी भाव रति को पुष्ट करते हैं

"सभी संचारी भाव हृदय में स्थित विशेष भावआनन्द हैं। ये तेंतीस भावनाएँ स्वाभाविक रूप से हृदय में जागृत होती हैं। जब कोई कृष्ण से प्रेम सम्बन्ध जागृत कर लेता है, तो वे माधुर्य रस के संचारी भाव हैं। वे विभिन्न आनन्दानुभूतियाँ अन्तर्विरोधी स्वभावों की हैं। ऐसा नहीं है कि सभी भाव एक ही समय में क्रियाशील हो जाते हैं। जिस प्रकार का रस सक्रिय होता है, उसी के अनुसार संचारी भाव जागृत होते हैं। कभी-कभी यह निर्वेद तथा कभी-कभी मद है। कभी-कभी यह आलस्य, तथा कभी-कभी प्रबोध है। कभी-

कभी यह विषाद, तथा कभी हर्ष है। कभी-कभी यह मोह, तथा कभी मति होता है। जब तक ये संचारी भाव जागृत न हों, रति किस प्रकार पुष्ट हो पायेगी?"

अपने विशिष्ट सम्बन्ध से मिश्रित रति ही प्रेम है

"अब आप समझ पायेंगे कि स्थायी भाव के रूप में रति एक नायक के समान है। तत्सम्बन्धी विभाव नायक के आसन के समान है। क्रियाकलापों के रूप में अनुभाव नायक की शक्ति के समान है। तथा संचारी भाव सैनिक हैं। विभिन्न सम्बन्धों के अनुसार रसों के पाँच विभाग प्रकट होते हैं। रति रस के विज्ञान की अविभाज्य जड़ के समान है। जब रति अकेली होती है, तो वह रति कहलाती है, परन्तु जब यह किसी के सम्बन्ध के साथ मिल जाती है, तो यह प्रेम बन जाती है। जिस प्रकार रति जब किसी के विशिष्ट सम्बन्ध की शरण लेती है तो वह विभाव प्राप्त कर लेती है, उसी प्रकार जब रति किसी के सम्बन्ध से मिल जाती है, तो यह (यथोचित) प्रेम में परिवर्तित हो जाती है। जैसे ही वह रस विकसित होता है, साधक अन्य रसों को त्याग देता है। जिस रस में कोई उन्नति करता है, उसके अनुसार वह रस लाभदायक तथा सर्वश्रेष्ठ है। यह रस के विज्ञान की संरचना पर विचार है।"

निरपेक्ष विचारपूर्वक रस का तुलनात्मक अध्ययन तथा साथ ही शान्त रस पर विचार

"निष्पक्ष विचार के अनुसार दास्य रस शान्त रस से उच्च है। सख्य रस दास्य रस से उच्च है। वात्सल्य रस सख्य रस से श्रेष्ठ है तथा माधुर्य रस वात्सल्य रस से श्रेष्ठ है। यह तुलना निष्पक्ष विचारानुसार स्वीकार की जा सकती है। शान्त रस में मात्र रति ही विद्यमान रहती है, विभाव तथा संचारी भाव अभी तक अविकसित रहते हैं। उस अवस्था में माया का त्याग करके साधक अध्यात्म में स्थित तथा अदृष्ट जड़ पदार्थ के समान निराकारवादी जैसा ही प्रतीत होता

है। यद्यपि यह एक प्रकार की मुक्ति ही है, परन्तु इसमें मुक्ति के फल का आनन्द प्राप्त नहीं होता है। अदृष्ट रति आकाश में एक काल्पनिक पुष्प के समान शक्तिरहित है। उन्नत साधक के लिए, वे परिणाम वास्तविक रूप में तुच्छ हैं। ब्रह्मवादी साधक उस अवस्था का कितना ही गुणगान क्यों न करें, एक वैष्णव जानता है कि वह एक कीट से बढ़कर नहीं है।"

दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य रस पर विचार

"जब विभाव को मिला लिया जाता है, तो दास्य रस जागृत हो जाता है। दास्य रस दो प्रकार का है—सिद्ध दास्य तथा उन्नति गर्भ। सिद्ध दास्य में दास्य ही सीमा है। उन्नति गर्भ दास्य में सख्य वात्सल्य तथा माधुर्य रस अंकुरित होते हैं।

"इस प्रकार सख्य दो प्रकार का है—सिद्ध तथा उन्नति गर्भ। सिद्ध सख्य में रति, प्रेम तथा प्रणय स्थिर प्रतीत होते हैं। उन्नति में वात्सल्य तथा माधुर्य भावनाएँ अंकुरित होती हैं।

"वात्सल्य सदैव सिद्ध है। वात्सल्य किसी अन्य रस में परिवर्तित नहीं होता। जब सख्य पुष्ट होता है, तो यह वात्सल्य या माधुर्य बन जाता है। यद्यपि वात्सल्य एक प्रकार की चरम सीमा है, यह माधुर्य से निम्न है। माधुर्य रस में प्रणय, मान, स्नेह इत्यादि आश्रित नहीं हैं। वे पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हैं।"

रस तत्त्व को श्री गुरुदेव के साथ आस्वादन करके समझना चाहिए

"हे साधु वैष्णवों! मैंने संक्षेप में रस के विज्ञान का वर्णन किया है। केवल कुछ शब्द कहकर इस विषय पर और अधिक नहीं कहा जा सकता। रस तो आस्वादनीय तत्त्व है। केवल सुनकर कोई रस को नहीं समझ सकता। जब आप उस शुद्ध रस का आस्वादन करते हैं, तब आप उस (शुद्ध रस) में जागृत होनेवाली भावनाओं को समझ सकते हैं। उन्हें कोई भी शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं कर सकता। यदि यहाँ उपस्थित किसी व्यक्ति ने रस तत्त्व का आस्वादन नहीं

किया है, तो उसे एक योग्य गुरु की शरण लेनी चाहिए, गुह्य रूप से रस का आस्वादन करना चाहिए तथा इस विज्ञान की अनुभूति करनी चाहिए। मैं कुछ और कहने में असमर्थ हूँ। वैष्णवों के चरणों में अनन्त प्रणाम करते हुए, मैं यहाँ विराम देता हूँ।"

आनन्द तथा नरेन बाबू वैष्णव पद प्राप्त करते हैं

पण्डित बाबाजी के अमृत तुल्य वचनों से प्रसन्न होकर सभी वैष्णव कह उठे, "साधु! साधु!" और फिर अपने-अपने निवासस्थानों की ओर चल दिये। बाबाजी महाशय की वार्ता सुनकर आनन्द बाबू तथा नरेन बाबू रस के अमृत का पान करने के लिए सर्वाधिक उत्सुक हो गये। उन्होंने रस के विषय में और अधिक उपदेश प्राप्त करने के लिए योगी बाबाजी के चरणकमलों की शरण ले ली। उन्होंने अपने गुरु के चरणकमलों में क्या प्राप्त किया, यह गुह्य बात है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। अपने पूर्व कर्मानुसार मल्लिक महाशय योग शास्त्र में सिद्ध बन गये। किन्तु वे रस के विज्ञान को बिल्कुल नहीं समझ पाये।

❖❖❖

पात्र परिचय

१. प्रेमदास बाबाजी—व्रज के एक महान साधु
२. हरिदास बाबाजी—सिद्ध गोवर्धन दास बाबाजी के शिष्य एवं तीनों क्षेत्रों में प्रसिद्ध (गौड़, नवद्वीप, पुरी) साधु
३. पण्डित दास बाबाजी—गोवर्धनवासी साधु
४. बिरबम का गायक—सभा में गानेवाला एक भक्त
५. योगी बाबाजी—अष्टाङ्ग योगी तथा प्राणायाम में सिद्धि प्राप्त एक वैष्णव साधु
६. मल्लिक महाशय—योगी बाबाजी के पास कलकत्ता से आये हुए एक सज्जन, जो योगशास्त्र व अनेक हिन्दू ग्रन्थों का अध्ययन कर चुके थे
७. नरेन बाबू—मल्लिक महाशय के साथ कलकत्ता से आये एक सज्जन, जो राजाराम मोहन राय के ब्रह्मवाद मत के अनुयायी एवं प्रचारक थे
८. आनन्द बाबू—नरेन बाबू के मित्र एवं ब्रह्मवाद के अनुयायी
९. ब्रह्मवादी आचार्य—राजाराम मोहन राय के ब्रह्मवाद मत के प्रचारक
१०. नित्यानन्द दास बाबाजी—कलकत्ता में रहनेवाले एक साधु
११. बाउल बाबा—अपसम्प्रदाय के साधु
१२. प्रेमभाविनी—एक महान् व्रजवासिनी वैष्णवी तथा नरेन बाबू की बुआ

❖❖❖

श्लोक एवं गीत

१. नाकर्णयति सुहृदुपदेशम्— *गीतावली*
२. यमादिर्भि योगपथैः— *श्रीमद्भागवत* १.६.३५
३. आसनं प्राणसंरोधः— *निरूत्तर तन्त्र*
४. त्यज रे मन हरिविमुख—तीर्थयात्री महिला का गायन
५. हरि हरि! कबे वृन्दावनवासी—नरोत्तम दास ठाकुर
६. केन आर कर द्वेष
७. यमनियमप्राणायाम—पतंजलि दर्शन २.२९
८. अहिंसा सत्यास्तेय—पतंजलि दर्शन २.३०
९. शौचसंतोषतपः—पतंजलि दर्शन २.३२
१०. स्थिर सुखमासनम्—पतंजलि दर्शन २.४६
११. उरोरुपरिविन्यस्य—पद्मासन परिभाषा
१२. जानुवौरन्तरे योगी—स्वस्तिकासन परिभाषा
१३. तस्मिन् सति श्वास प्रश्वासर्योगति—पतंजलि दर्शन २.४९
१४. बाह्याभ्यन्तरस्तंभवृर्ति—पतंजलि दर्शन २.५०
१५. बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपि चतुर्थः—पतंजलि दर्शन २.५१
१६. सविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य—पतंजलि दर्शन २.५४
१७. देश बन्धंश्चित्तस्य धारणा—पतंजलि दर्शन ३.१
१८. तत्र प्रत्ययेकतानता ध्यानम्—पतंजलि दर्शन ३.२
१९. तद्वेार्थ मात्र निर्भासं—पतंजलि दर्शन ३.३
२०. ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान्— *श्री चैतन्य चरितामृत,* मध्य १९.१५१
२१. अरे गुरुतत्त्व जेने कृष्णधन—बाउल बाबा
२२. गौराङ्ग बोलिते हबे—'प्रार्थना'—नरोत्तम दास ठाकुर
२३. कबे वैष्णवेर दया—नरेन बाबू
२४. कोन भाग्ये कोन जीवेर श्रद्धा— *श्री चैतन्य चरितामृत,* २.२३०
२५. अभिनव—गीतावली ९.१३
२६. निगम कल्पतर्रो गलितं फलम्— *श्रीमद्भागवत* १.१.३

❖❖❖

प्रेम प्रदीप प्रकाश

(ग्रन्थ में चर्चित विषय व सिद्धान्त)

१. कर्म, ज्ञान तथा हरिकथा
२. शान्ति का एकमात्र मार्ग—कृष्ण सेवा, योग नहीं
३. अष्टाङ्ग योग व भक्तियोग की तुलना
४. योग से भक्ति की उत्कृष्टता
५. जीवों के दो विभाग
६. बद्ध जीव तथा शुद्ध जीव के कार्यकलाप
७. योग तथा भक्ति में मुख्य अन्तर
८. भक्ति—सुरक्षित पथ
९. योग पथ की निकृष्टता व जटिलता (५ कारण)
१०. इन्द्रिय संयम के लिए अष्टाङ्ग योग के महत्त्व पर तर्क
११. शुष्क चिन्तन के अभ्यास से पतन
१२. कर्मकाण्ड की भाँति इन्द्रियतृप्ति के लिए भक्तिकार्य करने से पतन
१३. आत्मा की स्वरूप स्थिति
१४. पतन का कारण
१५. मुक्ति का उपाय
१६. भक्तों से संग में भक्ति कार्यों का आस्वादन करना चाहिए
१७. राजाराम मोहन राय द्वारा प्रचारित ब्रह्मवाद मत
१८. भारतीय संस्कृति पर दोषारोपण
१९. आधारभूत आध्यात्मिक प्रश्न
२०. ब्रह्मवादी प्रत्युत्तर
२१. हठयोग पर निष्कर्ष टिप्पणी
२२. राजयोग व हठयोग की तुलना
२३. हठयोग के विज्ञान का विश्लेषण
२४. साधु संग की महिमा
२५. असतसंग त्याग का उपदेश
२६. व्रजवास प्राप्ति की प्रार्थना
२७. योग साधना के बिना रस समाधि तथा राग साधना

२८. भौतिक व आध्यात्मिक आसक्ति के मध्य अन्तर
२९. वैष्णव साधना के बिना वैराग्य सम्भव नहीं
३०. योगाभ्यास द्वारा आध्यात्मिक आसक्ति असम्भव
३१. रागानुग प्रेमभक्ति की योगाभ्यास तथा निराकार ज्ञान से श्रेष्ठता
३२. भक्ति की प्रक्रियाओं/कार्यकलापों में मन इन्द्रियों को नियोजित करना
३३. उपासना पद्धतियों का सामंजस्य
३४. वैष्णव दर्शन के विषय में सन्देह
३५. विग्रह आराधना अथवा मूर्तिपूजा?
३६. विग्रह अर्चन का विज्ञान
३७. राजयोग की आठ प्रक्रियाएँ
३८. वैष्णवदर्शन का विज्ञान
३९. बाउल आदि अपसम्प्रदाय
४०. चार प्रामाणिक सम्प्रदायों व आचार्यों के दर्शन का एकत्त्व एवं सामंजस्य
४१. श्री चैतन्य महाप्रभु मध्व संप्रदाय से सम्बन्धित
४२. गोस्वामी ग्रन्थ: चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं के संग्रह
४३. भक्ति विज्ञान सर्वश्रेष्ठ विज्ञान है
४४. केवल तर्क व भक्ति ग्रन्थों के अध्ययन से भक्ति का उदय असम्भव
४५. योग्यता के स्तर के अनुसार भगवान् की अनुभूति
४६. साधन के तीन विषय : साधक, साधन, तथा साध्य
४७. साधन के तीन विभाग : कर्म, ज्ञान, तथा भक्ति
४८. साध्य एक ही है—भगवान्
४९. भिन्न साधनों द्वारा भिन्न रूपों में प्राकट्य
५०. योग्यतानुसार प्राकट्य
५१. परमात्मा, ब्रह्म, भगवान्
५२. भगवान् का ऐश्वर्य
५३. भगवान् का माधुर्य
५४. प्रार्थना
५५. दयाभाव का उदय
५६. श्रद्धा से प्रेम तक भक्ति में प्रगति के स्तर
५७. आत्मा का स्वरूप
५८. वैष्णव उच्छिष्ट : अधरामृत की महिमा
५९. वैष्णव दर्शन : मानवता में एकता का कारण

६०. व्रज भाव का आस्वादन
६१. भक्ति के स्वरूप पर ब्रह्मवादी मत
६२. परम सत्य की सुन्दरता पर विचार
६३. ब्रह्मवादी मतानुसार भक्ति की परिभाषा
६४. *श्रीमद् भागवत* : सर्वशास्त्रसार
६५. रस विचार
६६. इन्द्रियतृप्ति : भक्ति का विकृत प्रतिबिम्ब
६७. भाव तथा रस में अन्तर
६८. रस के प्रकार
६९. वैकुण्ठ रस : तर्क से परे
७०. स्वर्गीय रस
७१. वैकुण्ठ रस
७२. भाव तर्क पर आश्रित नहीं होता
७३. वैकुण्ठ रस का विज्ञान
७४. वैकुण्ठ रस और भगवान् विविधता से परिपूर्ण हैं
७५. ब्रह्म : वैकुण्ठ का आवरण और सीमा
७६. विविधता : जीव और भगवान् में अन्तर
७७. विविधता शक्ति के त्रिविध प्रभाव
७८. चित् का अर्थ व स्वरूप
७९. पाँच रस
८०. रति-रस का मूल
८१. रति विचार
८२. माधुर्य रस
८३. प्रत्येक जीव का एक रस है
८४. अनुभाव
८५. संचारी भाव
८६व्यभिचारी भाव
८७. प्रेम
८८. शान्त रस
८९. दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य रस
९०. श्रीगुरु के मार्गदर्शन की अनिवार्यता

❖❖❖

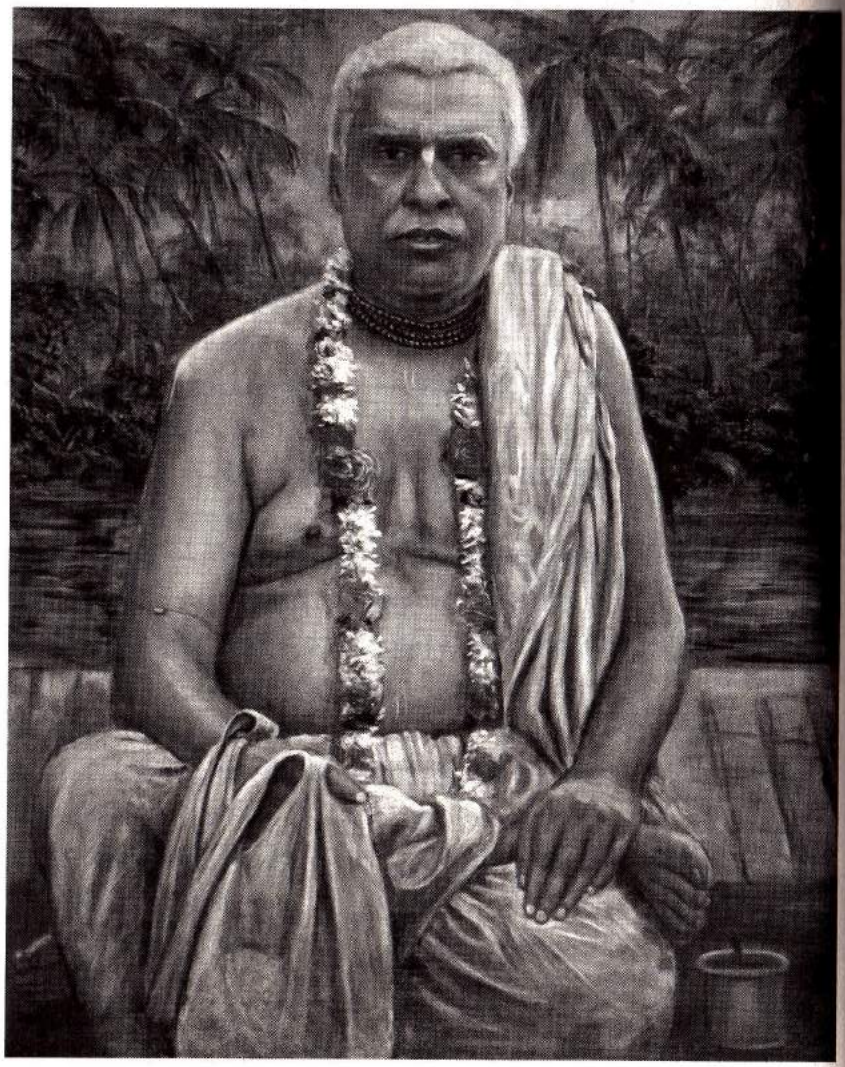

सच्चिदानन्द श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

(१८३८-१९१४)

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर का जन्म २ सितम्बर, १८३८ रविवार को पश्चिम बंगाल में नदिया जिले के प्राचीन गाँव विरनगर (उलाग्राम या उला) में हुआ था। उनके पिता श्रीमान आनन्दचन्द्र दत्त तथा माता जगत्मोहिनी देवी थीं। पिताजी ने उनका नाम केदारनाथ (शिवजी का नाम) रखा। वह माता-पिता की तीसरी संतान थे। उनका परिवार अत्यन्त धन-समृद्धि से परिपूर्ण था।

केदारनाथ की शिक्षा का प्रारम्भ उनके नाना के पूजा भवन में हुआ, जहाँ गाँव के अनेक बालक पढ़ने के लिए एकत्रित हो जाते थे। पाँच वर्ष की आयु में वे बंगाली माध्यम पाठशाला में पढ़ने जाते थे। बाद में वे अपनी नानी द्वारा प्रारम्भ की गई अंग्रेजी माध्यम पाठशाला में अध्ययन करने लगे। एक फ्रांसीसी-अध्यापक, डिजर बरेट, जो भारतीयता से प्रभावित था, उन्हें पढ़ाने आता था। सात वर्ष की आयु में केदारनाथ और उनका भाई कृष्णनगर के राजा द्वारा स्थापित कॉलेज में प्रवेश लिए। उनकी विद्वत्ता की सभी प्रशंसा करते थे। ८ वर्ष की आयु में वे अपने मामा की पाठशाला में अध्ययन करने लगे। वहाँ उन्होंने बंगाली और गणित में विद्वत्ता प्राप्त की।

संस्कार : बचपन से ही रामायण तथा महाभारत सुनने में उनकी विशेष रुचि थी। जब भी किसी धार्मिक उत्सव या पूजा का अनुष्ठान होता, तो वे अत्यन्त प्रसन्न हो जाते। अपनी स्वलिखित जीवनी में ठाकुर भक्तिविनोद स्मरण करते हुए लिखते हैं, "जब भी घर में महाभारत और रामायण का पाठ होता, तो मैं सुनने जाता था। मुझे हनुमान का समुद्र पार कर लंका जाना या असुरी सिंहिका के विषय में सुनना अत्यन्त रुचिकर लगता था। आदरणीय पाठक कुछ विशिष्ट भँगिमाओं के साथ कथावाचन करते थे, तथा मेरे मन में अत्यन्त प्रेम जागृत हो जाता था। मैं पाठशाला के बाद नियमित रूप से वहाँ जाने की आदत बनाता था।"

विवाह एवं उच्च शिक्षा : १२ वर्ष की आयु में राजाघाट निवासी श्रीयुक्त मधुसूदन मिश्र की ५ वीं पुत्री शयामणि से उनका विवाह हो गया। १४ वर्ष की

आयु में उन्होंने कलकत्ता में अपने मामा काशीप्रसाद घोष के पास रहकर हिन्दू चैरिटेबल इन्स्टीट्यूशन स्कूल में १८५२ से १८५६ तक चार साल लगातार अध्ययन किया। फिर १८५६ में उन्होंने हिन्दू विद्यालय में प्रवेश लिया, जो बाद में कलकत्ता विश्वविद्यालय के रूप में प्रसिद्ध हुआ। वहाँ उन्होंने 'समग्र व्याकरण' के अधीन विद्याध्ययन किया।

नौकरी व पारिवारिक जीवन : अध्ययन समाप्ति के बाद पारिवारिक उत्तरदायित्व के कारण वे नौकरी खोजने लगे। १८५८ में वे उड़ीसा के 'केन्द्र' नामक स्थान में जिला विद्यालय में अध्यापक के पद पर नियुक्त हुए। तदोपरान्त उन्होंने मिदनापुर में कार्य किया। बाद में वे छोदग्न के न्यायालय के जज के पास क्लर्क के रूप में कार्यरत हुए। उसी दौरान बुरदवन में उन्होंने वकालत की परीक्षा दी। २७ वर्ष की आयु में वे छपरा में डिप्युटी रजिस्ट्रार बने। १८६८ में वे दिवजपुर के डिप्युटी मैजिस्ट्रेट बने। फिर वे १८६८ में ही अपने परिवार सहित पुरी चले गये व मैजिस्ट्रेट पद पर ही आसीन हुए। पुरी में उन्हें पुत्र प्राप्ति हुई, जो बाद में एक महान् वैष्णव दर्शन एवं भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के संकीर्तन आन्दोलन का शक्तिशाली प्रवर्तक व प्रचारक बना। उसका नाम उन्होंने विमलप्रसाद रखा, जो आगे चलकर श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के नाम से प्रसिद्ध हुए।

१८८० में नरेन में रहते हुए उन्होंने कृष्ण संहिता प्रकाशित की और फिर कल्याण कल्पतरु का प्रकाशन किया। उन्होंने श्री विपिन बिहारी गोस्वामी से दीक्षा प्राप्त की, जो श्री चैतन्य महाप्रभु के संगी बंसीवदानन्द ठाकुर के वंशज थे और जिन्हें महाप्रभु के संन्यास ग्रहण करने के बाद उनकी माता तथा पत्नी की देखभाल करने का उत्तरदायित्व मिला था। विपिन बिहारी गोस्वामी जी नित्यानन्द प्रभु की पत्नी जाह्नवा देवी के वंश से दीक्षित शिष्य थे। १८८६ में ठाकुर भक्तिविनोद वृन्दावन गये तथा वहाँ प्रथम बार श्रील जगन्नाथ दास बाबाजी से उनकी भेंट हुई। उन्हें अपना शिक्षा गुरु मानते हुए भक्तिविनोद ठाकुर ने उनसे उपदेश प्राप्त किये। श्रील जगन्नाथ दास बाबाजी ने उन्हें भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु का जन्म स्थान खोजने का निर्देश दिया। बाबाजी ६ मास वृन्दावन तथा ६ मास नवद्वीप में भजन करते थे।

जन्मस्थान की खोज : १८८७ में, ४९ वर्ष की आयु में ठाकुर नौकरी से निवृत्त होने का विचार करने लगे ताकि वे वृन्दावन जाकर भजन कर सकें। इस

प्रकार की योजना मन में लिये वे अपने मित्र 'श्रीराम सेवक भक्ति भृंग' से सलाह लेने गये। एक बार कुछ सरकारी कार्य से ठाकुर तारकेश्वर गये। रात को सोते हुए वहाँ उन्होंने एक अद्भुत स्वप्न देखा, जिसमें चैतन्य महाप्रभु प्रकट होकर उनसे कहे, "तुम अवश्य वृन्दावन जाओगे, परन्तु तुम्हारे लिए नवद्वीप में एक सेवा है जो तुम्हें करनी ही होगी। उस विषय में तुम क्या करोगे?" तब ठाकुर भक्तिविनोद ने अनेक प्रयासों के बाद अपना तबादला नवद्वीप में करवा लिया। वहाँ उन्होंने महाप्रभु का जन्म स्थान खोजने के प्रयास प्रारम्भ कर दिये। परन्तु इस विषय में निवासी लोगों का ज्ञान व रुचि अत्यन्त अल्प होने के कारण ठाकुर कभी-कभी निराश हो जाते। एक रविवार को लगभग रात्रि १० बजे नवद्वीप में रानी धर्मशाला की छत पर उन्हें एक विराट 'प्रकाश' एक स्थान से निकलता हुआ दिखाई दिया। जनसाधारण से पूछने पर उन्हें पता चला कि वह स्थान बललदिधी है। ठाकुर भक्तिविनोद जब अगले दिन वहाँ गये, तो फिर उन्हें वहीं दिव्य दृश्य दिखाई दिया। उस स्थान के वयोवृद्ध लोगों ने भी उन्हें बताया कि यही चैतन्य महाप्रभु का जन्म स्थान है।

अपने बढ़ते हुए विश्वास को और अधिक दृढ़ व प्रामाणिक करने के लिए तथा नरहरि सरकार ठाकुर के नवद्वीप परिक्रमा पद्धति आदि ग्रन्थों के प्राचीन संस्करणों व प्राचीन नक्शों का अवलोकन करने लगे। अन्ततः १८८८ के प्रारम्भ में ठाकुर अपने शिक्षा गुरु श्रील जगन्नाथ दास बाबाजी को उस स्थान पर लेकर गये। बाबाजी उस समय १२० वर्ष के थे। वे चलने में अक्षम थे। अतः उनका शिष्य, बिहारी उन्हें एक टोकरी में बिठाकर सब जगह ले जाता था। वृद्ध बाबाजी अपनी पलकें उठा पाने में भी समर्थ नहीं थे। जब वह उस स्थान पर पहुँचे तो बाबाजी उसी क्षण भावविभोर हो गये तथा उछल कर चिल्लाने लगे, "एई तो निमाई-जन्मस्थान" (यही तो निमाई का जन्मस्थान है)। इस प्रकार अनुसंधानात्मक व आध्यात्मिक दोनों स्रोतों से वह स्थान प्रमाणित हो गया।

हरिनाम का प्रचार : अगस्त १८९१ में ठाकुर को दो वर्ष का अवकाश प्राप्त हो गया। अतः वह प्रचार के लिए कुछ भक्तों के साथ अनेक स्थानों पर भ्रमण करने लगे। उन्होंने अपने जीवन काल में ५०० से भी अधिक नाम हट्ट संघ स्थापित किये। वह अनेक प्रान्तों में जाकर वहाँ विशाल हरिनाम संकीर्तन तथा प्रवचन करते। हजारों लोग उन कार्यक्रमों में भाग लेते थे।

शक्त्याविष्ट लेखन : श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने अनेक ग्रन्थों की रचना व संकलन किया, जिनका उद्देश्य श्री चैतन्य महाप्रभु के संकीर्तन आन्दोलन का प्रचार करना था। १८९२ में उन्होंने 'वैष्णव सिद्धान्त माला' की रचना की। १८९३ में उन्होंने 'तत्त्वविवेक' लिखी। तत्पश्चात् उन्होंने 'शरणागति,' 'गीतमाला' तथा गीतावली नामक तीन भजन पुस्तकें लिखीं, जिनमें सम्पूर्ण कृष्णभक्ति का दर्शन तथा अपनी अनुभूतियाँ व्यक्त कीं। 'नाम भजन,' तत्त्वसूत्र,' 'भजन रहस्य' इत्यादि अनेक रचनाएँ उनकी ही देन हैं।

पदनिवृत्ति : १८९४ में ५६ वर्ष की आयु में ठाकुर भक्तिविनोद ने पदनिवृत्ति ली तथा हरिनाम प्रचार रूपी उच्च जिम्मेदारी का भार पूर्ण रूप से अपने कन्धों पर ले लिया। वे नवद्वीप में सुरभि कुंज में रहकर भजन, प्रचार तथा लेखन करने लगे।

पाश्चात्य प्रचार : १८९६ में 'श्री गौराङ्ग लीलास्मरण स्तोत्रम्' नामक ग्रन्थ के माध्यम से ठाकुर भक्तिविनोद की वाणी पाश्चात्य जगत में पहुँची। इस पुस्तक में प्रस्तावना में ४७ पृष्ठ 'श्री चैतन्य महाप्रभु, उनका जीवन व शिक्षाएँ' नामक अंश था, जिसमें महाप्रभु के जीवन व आन्दोलन की स्पष्ट झलक मिलती है।

भक्तिकुटी व स्वानन्दसुखदकुंज : शताब्दी के अन्त में (सन १९०० के करीब) श्रील भक्तिविनोद ठाकुर जगन्नाथ पुरी में अपने पुत्र विमलप्रसाद (श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर) के साथ श्रील हरिदास ठाकुर की समाधि स्थल के पास भक्तिकुटी में एकान्तिक भजन करने लगे। १९०० ई. में वे नवद्वीप वापिस लौट गये और 'हरिनाम चिन्तामणि' आदि कुछ ग्रन्थ प्रकाशित किये।

अन्त्य लीला : श्रील गौरकिशोर दास बाबाजी महाराज से बाबाजी वेश दीक्षा प्राप्त कर १९१० में कलकत्ता में 'भक्ति भवन' में गहन भजन के लिए आ गये और श्री श्री राधा-कृष्ण की नित्य लीलाओं का स्मरण करने लगे। जून २३, १९१४ जो गदाधर पण्डित (राधारानी के अवतार) के तिरोभाव तिथि को ठाकुर भक्तिविनोद भगवान् की नित्यलीलाओं में प्रविष्ट हो गये।

❖❖❖